चतुरङ्ग

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मोहनलाल वाजपेयी द्वारा अनूदित

विश्वभारती,

६।३, द्वारकानाथ ठाकुर लेन,

कलकत्ता

प्रकाशक : पुलिनविहारी सेन, विश्वभारती,
६।३, द्वारकानाथ ठाकुर लेन,
कलकत्ता

प्रथम बंगला संस्करण : सन् १९१६
हिन्दी अनुवाद 'विश्वभारती-पत्रिका', खंड २ से उद्धृत
सितम्बर, १९४५
मूल्य : डेढ़ रुपया

मुद्रक : प्रभातकुमार मुखोपाध्याय,
शान्तिनिकेतन-प्रेस,
शान्तिनिकेतन

पुस्तक का नाम है 'चतुरङ्ग'। 'बड़े-चाचा' 'शचीश' 'दामिनी' और 'श्रीविलास' इसीके चार अंश हैं।

सूची

बड़े चाचा	१
शबाश	३०
दामिनी	५५
श्रीविलास	८३

चतुरङ्ग

बड़े चाचा

१

मैं देहात से कलकत्ते आकर कालिज में भर्ती हो गया। शचीश तब बी० ए० में था। हम दोनों एक ही उम्र के रहे होंगे।

शचीश को देखने से जान पड़ता, मानो वह कोई ज्योतिष्क हो। उसकी आंखें सदा दमकती रहतीं; लंबी पतली अंगुलियां मानो अग्नि की शिखा के समान थीं; देह का रंग जैसे रंग ही न हो, आभा हो। शचीश को देखते ही जैसे मैंने उसके अंतरात्मा के दर्शन किए, इसीसे पल भर में ही मैं उसे चाहने लगा।

किंतु आश्चर्य की बात यह थी कि जो लोग शचीश के साथ पढ़ते थे, उनमें से बहुतोंके मन में उसके प्रति तीव्र विद्वेष का भाव था। बात दरअसल यह है कि जो लोग औसत दस जनों की तरह साधारण होते हैं, उनका औसत दस जनों के साथ बिना कारण कोई विरोध नहीं हुआ करता। किंतु जब मनुष्य के अंतर का दीप्यमान् सत्यपुरुष उसकी बाहरी स्थूलता को भेदकर प्रकाशित होता है, तब कोई तो उसको प्राणपण से पूजा करते हैं, और कोई बिना कारण प्राणपण से उसका अपमान करते रहते हैं।

हमारे छात्रावास के लड़कों ने यह जान लिया था कि मैं मन-ही-मन शचीश की भक्ति किया करता हूं। इसके कारण हमेशा उनके आराम में जैसे बाधा पड़ा करती थी। इसीलिये मुझे सुना-सुनाकर

शचीश के संबंध में कटु बातें कहते हुए वे कभी न थकते। मैं भी जानता था कि आंख में किरकिरी पड़ जाने पर उसे मलने से ही कसक और बढ़ जाती है; बात जब कर्कश हो तब वहां जवाब न देना ही अच्छा है। लेकिन एक दिन शचीश के चरित्र को लक्ष्य करके ऐसी कलंकित गंदगी उठाई गई कि मैं फिर चुप न रह सका।

मुश्किल यह थी कि शचीश के साथ मेरी जान-पहचान नहीं थी। और विपक्षी दल में कोई उसका पड़ौसी, तो कोई किसी सिलसिले से कुछ-और होता था। उन सबने जब खूब दर्प और तेज के साथ प्रचारित किया कि वह बात एकदम ख़ालिस सत्य है, तो मैंने उससे भी अधिक दर्प और तेज के साथ घोषित किया कि मैं उसमें धेला-भर भी विश्वास नहीं करता। तब तो समूचे छात्रावास के लोग अस्तीन चढ़ाकर कह उठे, तुम तो बड़े बदतमीज़ हो जी!

उस रात बिछौने पर लेटे-लेटे मुझे रुलाई आ गई। दूसरे दिन क्लास के बीच के अवकाश में शचीश गोल-तालाब की छाया-तले घास पर लेटा हुआ-सा किताब पढ़ रहा था। मैं बिना जान-पहचान उसके निकट बैठा-बैठा जाने क्या-क्या बेसिलसिले झाड़ गया, कुछ ठिकाना नहीं। शचीश किताब बंद करके कुछ देर मेरी तरफ़ एकटक ताकता रहा। जिन्होंने उसकी वे दीप्त आंखें नहीं देखीं, वे अनुमान भी नहीं कर सकेंगे कि उसकी यह दृष्टि ठीक कैसी होती थी।

शचीश बोला, जो लोग निन्दा करते हैं, उन्हें निन्दा प्रिय होती है इसीलिये करते हैं, सत्य प्रिय होता है इसलिये नहीं। अगर यही बात है तो किसी एक विशेष निन्दा को झूठ साबित करने के लिये छटपटाने से क्या लाभ?

मैंने कहा, तब भी, देखिए, झूठ बोलनेवाले को—

शचीश ने बाधा देकर कहा, झूठ तो वे लोग नहीं बोलते! हमारे मुहल्ले में एक तेली के लड़के को लकवा लग जाने से उसके हाथ-पैर कांपते रहते हैं। ठंड के दिनों में मैंने उसे एक क़ीमती कंबल दे दिया था। उस दिन मेरा नौकर शिबू गुस्से से फड़कता हुआ आकर कहने लगा, 'बाबू, उस छोकरे की कँपनी-अँपनी सब शरारत है।'—मुझमें लेशमात्र भी भलाई का आभास है, इस बात को जो लोग हंसकर एकबारगी उड़ा देते हैं, उनकी हालत ठीक शिबू-जैसी ही है; वे लोग जो कुछ कहते हैं, उसमें सचमुच ही विश्वास करते हैं। मेरे भाग्य में एक क़ीमती कंबल फालतू आ जुटा था, इसीलिये दुनिया भर में शिबू के दल ने निःसंशय विश्वास किया कि उसपर मेरा कोई अधिकार नहीं। इस संबंध में उन लोगों के साथ झगड़ा करते मुझे तो लज्जा ही होती है।

इसका कोई उत्तर दिए बिना ही मैं कह उठा, ये लोग कहते हैं, आप नास्तिक हैं, सो क्या सच है?

शचीश बोला, हां मैं नास्तिक हूं।

मेरा सिर नीचा हो आया। छात्र-निवास के सभी विद्यार्थियों के साथ मैंने यह कहकर झगड़ा किया था कि शचीश-जैसा उज्ज्वल लड़का कभी नास्तिक हो ही नहीं सकता।

शचीश के बारे में मुझे शुरू से ही दो आघात लगे थे। एक तो यह कि उसे देखते ही मैंने तय कर लिया था कि वह ब्राह्मण की संतान है। उसका मुख मानो शुभ्र पाषाण पर खुदी हुई देवमूर्ति की तरह था। सुना था, उसकी उपाधि मल्लिक है। हमारे गांव में मल्लिक-उपाधि-

धारी कुलीन ब्राह्मणों का एक घराना भी है। किंतु पीछे जाना गया कि शचीश बंगाल की गंधी-जाति का है। इधर हम लोगों का घराना निष्ठावान कायस्थों का घराना ठहरा ; सो जाति की दृष्टि से मैं गंधियों से मन ही मन काफ़ी घृणा किया करता था। और नास्तिक को तो नरघातक—यहां तक कि गोघातक—से भी कहीं अधिक पापिष्ठ मानता था।

मैं चुपचाप शचीश की तरफ़ ताकता रहा। देखा, उसके मुख पर तब भी वही ज्योति है—जैसे अंतर में पूजा का प्रदीप जल रहा हो !

कभी कोई गुमान भी नहीं कर सकता था कि मैं किसी भी जन्म में किसी गंधी के साथ बैठकर एक-साथ खाऊंगा और नास्तिकता में मेरी कट्टरता अपने गुरु से भी बाज़ी मार ले जाएगी। लेकिन धीरे-धीरे वह भी घटित हुआ।

विल्किन्स साहब हमारे कालिज में अंगरेज़ी साहित्य के अध्यापक थे। उनमें जितना ही पाण्डित्य था, छात्रों की ओर अवज्ञा भी उतनी ही। इस देश के कालेजों में बंगाली लड़कों को साहित्य पढ़ाना अध्यापन की कुली-मज़दूरी करना ही है—ऐसी ही उनकी धारणा थी। इसीलिये मिल्टन-शेक्सपियर की क्लास में भी वे अंगरेज़ी के बिल्ली शब्द का प्रतिशब्द बतलाते हुआ कहा करते : मार्जारजातीय चतुष्पद, a quadruped of the feline species. किंतु नोट्स लेने के मामले में शचीश को रिहाई थी। वे कहा करते, शचीश, तुम्हें जो इसी क्लास में बैठना पड़ता है सो इस नुकसान को मैं पूरा कर दूंगा, तुम मेरे घर जाकर सुन्दर साहित्य पढ़कर अपने मुंह का ज़ायका बदल सकोगे।

लड़के क्रुद्ध होकर कहा करते कि साहब जो शचीश को इतना अधिक चाहता है, सो इसका कारण सिर्फ उसकी देह की सफेदी ही है। और साहब को भुला रखने के लिये ही शचीश भी नास्तिकता की डींग हांका करता है।—उनमें से कोई-कोई बुद्धिमान् आडंबर करके साहब से 'पाज़िटिविज़्म' पर कोई पुस्तक मांगने भी पहुंच गए थे, किंतु साहब ने कह दिया, तुम समझोगे नहीं।—उन्हें नास्तिकता की चर्चा के लायक़ भी नहीं समझा गया! इससे शचीश पर नास्तिकता का आरोप और उसके विरुद्ध उनका क्षोभ क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था।

२

सिद्धान्त और आचरण के संबंध में शचीश के जीवन में निन्दा का जो कुछ भी कारण था, उसे संग्रह करके मैं यहां लिख रहा हूं। इसका कुछ हिस्सा मेरे साथ परिचय से पहले का है, कुछ बाद का।

जगमोहन शचीश के पितृव्य थे। वे अपने समय के विख्यात नास्तिक थे। ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे ऐसा कहना अधूरा होगा, कारण, वे अनीश्वर में विश्वास करते थे। जंगी जहाज़ के कप्तान का प्रधान व्यवसाय जिस तरह जहाज़ चलाने की अपेक्षा जहाज़ डुबाना होता है, उसी तरह सुयोग पाते ही आस्तिकधर्म की नैया को डुबाना ही जगमोहन का प्रधान धर्म था। ईश्वर में विश्वास करनेवाले के साथ उनका तर्क इस पद्धति पर चला करता था :

"ईश्वर यदि हैं तो मेरी यह बुद्धि उन्हींकी दी हुई है ;

वही बुद्धि कहती है कि ईश्वर नहीं हैं।

तुम लोग तिसपर भी उनके मुंह पर ही जवाब देते हो, ईश्वर हैं। इसी पाप की सज़ा के रूप में तेंतीस कोटि देवता तुम्हारे दोनों कान मलकर अपना जुर्माना वसूल कर रहे हैं।"

जगमोहन का ब्याह बचपन में हुआ था। युवावस्था में जिस समय उनकी पत्नी का देहांत हुआ, उससे पहले ही उन्होंने माल्थस का साहित्य पढ़ डाला था ; सो दुबारा विवाह नहीं किया।

उनके छोटे भाई हरिमोहन शचीश के पिता थे। उनकी प्रकृति बड़े भाई से इस क़दर विपरीत थी कि इस बात को लिखने से लोगों को सन्देह होने लगेगा कि गुपचुप कोई कि कहानी गढ़ी जा रही है। किंतु वस्तुतः कहानी ही लोगों का विश्वास अपहरण करने के लिये खूब सावधान होकर चलती है। सत्य को वह सब झंझट नहीं होती, इसीलिये अद्‌भुत होते हुए उसे भय नहीं होता। इसी कारण सुबह और सांझ जिस तरह विपरीत हैं, उसी तरह छोटे और बड़े भाइयों के परस्पर विपरीत होने का उदाहरण भी दुनिया में दुर्लभ नहीं।

हरिमोहन बचपन में बीमार रहा करते थे। गंडे-तावीज़, शान्ति-स्वस्त्ययन, संन्यासी की जटा से निचोड़े हुए जल, विशेष-विशेष पीठस्थानों की धूलि, नाना जाग्रत देवताओं के प्रसाद-चरणामृत और अनेक रुपयों द्वारा पाए हुए गुरु-पुरोहितों के आशीर्वाद की गढ़बन्दी के द्वारा मानो सब प्रकार के अकल्याण से उन्हें सुरक्षित रखा गया था।

बड़े होने पर बीमारी-अजारी से तो छुटकारा मिल गया, किन्तु वे एक बहुत ही सुस्त और ढोले-पोले आदमी हैं, यह संस्कार दुनिया से न मिटा। वे किसी प्रकार जीवित-भर बने रहें, मानो इससे ज्यादा उनपर कोई कुछ भी दावा नहीं करता था। उन्होंने भी इस तरफ़ से कभी किसीको निराश नहीं किया, ख़ासे जीवित बने रहे। किन्तु शरीर मानो अब चला कि तब—यही भाव दिखलाकर वे सदा सबको धमकाया करते। ख़ासकर कम उम्र में ही अपने पिता की मृत्यु हो जाने का दृष्टान्त देकर मां और मौसी के संपूर्ण सेवा-जतन को वे अपनी ही ओर अटका रखते। सबसे पहले भोजन, सबसे स्वतंत्र भोजन की व्यवस्था, सबकी अपेक्षा कम काम और सबसे अधिक आराम का आयोजन उन्हींका हुआ करता। सिर्फ़ मां-मौसी ही क्यों, तीनों लोकों के सब देवी-देवताओं पर उनकी ख़ास ज़िम्मेवारी है, इसे भी वे कभी न भूलते। और फिर केवल ठाकुर-देवता ही नहीं, संसार में जहां जिसके निकट जिस परिमाण में सुविधा प्राप्त होती, उसे उसी परिमाण में मानकर वे चलते थे—थाने के दारोग़ा, धनी पड़ोसी, उच्चपदस्थ राजकर्मचारी, अख़बार के सम्पादक, सबकी यथोचित भय-भक्ति करते ; गो-ब्राह्मण की तो बात ही क्या!

लेकिन जगमोहन का भय ठीक उल्टी तरफ़ से था। किसीसे उन्हें लेशमात्र सुविधा की भी प्रत्याशा है—कोई ऐसा सन्देह भी न कर बैठे, इसी आशंका से हैसियतवाले आदमियों को वे सदा हाथ भर दूर ही से नमस्कार कर चलते। देवता को न मानने में भी उन्हें दरअसल यही ज़िद थी। लौकिक-अलौकिक किसी भी शक्ति के निकट हाथ जोड़ने को वे क़तई राज़ी नहीं थे।

यथासमय—अर्थात् यथासमय से काफ़ी पहले ही हरिमोहन की शादी हो गई। तीन लड़कियों और तीन लड़कों के बाद शचीश का जन्म हुआ। सभी ने कहा, अपने बड़े चाचा के साथ शचीश के मुख की आश्चर्यजनक उन्हार है।—जगमोहन भी उसपर अपनेपन का कुछ ऐसा ही अधिकार कर बैठे जैसे वह उन्हींका लड़का हो।

इसमें जो कुछ लाभ का अंश था, उसकी खतौनी मिलाकर शुरू में हरिमोहन प्रसन्न ही हुए। कारण, जगमोहन ने स्वयं ही शचीश की शिक्षा का व्यय-भार ले लिया था।

अंगरेज़ी भाषा के असाधारण उस्ताद की हैसियत से जगमोहन काफ़ी मशहूर थे। कोई उन्हें बंगाल का मैकाले तो कोई जान्सन कहता। घोंघे के आच्छादन की तरह वे मानों अंगरेज़ी किताबों से आपादमस्तक घिरे हुए थे। पहाड़ पर गोल घिसी हुई बटियों की रेखा को देखकर जैसे अरण्य-निर्भर का पथ पहचाना जाता है, वैसे ही घर के किन-किन भागों में उनका चलना-फिरना होता है, सो फ़र्श से लेकर कड़ियों तक व्याप्त अंगरेज़ी किताबों का ढेर देखने से ही समझ में आ जाता था।

हरिमोहन ने अपने बड़े लड़के पुरन्दर को लाड़ के रस में एकबारगी गला ही डाला था। वह जो मांगता, उसमें वे नाहीं नहीं कर पाते। उसके लिये उनकी आंखों में आंसू सदा छलक आया करते। उन्हें ऐसा लगता मानों ज़रा-सी भी बाधा देने से लड़का बचेगा ही नहीं। पढ़ना-लिखना तो उसका कुछ हुआ ही नहीं, खूब जल्दी-जल्दी ब्याह हो गया और विवाह की चहारदीवारी में भी उसे कोई बांधकर नहीं रख सका। हरिमोहन की पुत्रवधू इसपर

खूब ज़ोर-शोर से एतराज़ करती और हरिमोहन इसके लिये बहू पर ही खूब क्रुद्ध हुआ करते। कहते, घर पर बहू के उत्पात की वजह से ही उनके लड़के को बाहर सान्त्वना खोजनी पड़ रही है।

इस सम्पूर्ण काण्ड को देखकर, पितृस्नेह की विषम विपत्ति से बचाने के ख्याल से, जगमोहन शचीश को सदा अपने साथ ही रखते, उसे कभी रिहाई न देते। शचीश देखते-देखते खूब कम उम्र में ही अंगरेज़ी लिखने-पढ़ने में पक्का हो उठा। किंतु मामला वहीं तक आकर तो रुका नहीं। दिमाग़ में मिल-बेन्थम का अग्निकाण्ड घट जाने से शचीश मानो नास्तिकता की मशाल की तरह प्रदीप्त होने लगा।

शचीश के साथ जगमोहन इस ढंग से रहते, जैसे वह उनका समवयस्क हो। गुरुजनों की भक्ति उनके मत में एक झूठमूठ का संस्कार था जो मनुष्य के मन में गुलामी का भाव पक्का कर देता है। घर के किसी नये जमाई ने कभी उन्हें 'श्रीचरणेषु'-पाठ के साथ एक चिट्ठी लिखी थी। इसपर उन्होंने उसे निम्नलिखित उपदेश दिया : माइ डियर नरेन, चरण को श्री कहने का अर्थ क्या होता है सो मैं भी नहीं जानता, तुम भी नहीं जानते, अतएव वह बात ही फ़िज़ूल है। इसके सिवा, मुझे एकबारगी भुलाकर तुमने मेरे चरण में निवेदन किया है, सो तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मेरे चरण मेरे ही एक अंश हैं, जब तक वे मुझसे जुड़े हुए हैं, तब तक उन्हें अलग करके देखना उचित नहीं। इसके अलावा, वह अंश हाथ भी नहीं है कान भी नहीं ; वहां कुछ भी निवेदन करना निरा पागलपन ही है। इसके सिवा, आख़िरी बात यह है कि मेरे चरण के संबंध में

बहुवचन-प्रयोग करने से भक्ति-प्रकाशन हो सकता है, कारण, कोई-कोई चतुष्पद तुम लोगों के भक्तिभाजन भी हैं, किंतु मेरे प्राणितत्त्व-घटित परिचय के संबंध में तुम्हारी अज्ञता का संशोधन कर देना मैं ज़रूरी समझता हूं।

३

शचीश के साथ जगमोहन ऐसे सभी बिषयों की आलोचना किया करते जिन्हें लोग अक्सर लुका-छिपाकर रखते हैं। इस विषय में किसीके आपत्ति करने पर वे कहते, बर्र का छत्ता तोड़ देने से ही बर्र को भगाया जा सकता है, इसी तरह इन मामलों में लज्जा को तोड़ देने से ही लज्जा के मूल कारण को हटाया जा सकता है। शचीश के मन से मैं लज्जा के छत्ते को ही तोड़े दे रहा हूं।

पढाई-लिखाई समाप्त हुई। अब हरिमोहन शचीश का अपने बड़े चाचा के हाथ से उद्धार करने के लिये छटपटाने लगे। किंतु बंसी तब तक गले में अटक चुकी थी, बिंध चुकी थी, इसलिये खींचा-तानी एक तरफ़ जितनी ही बढ़ने लगी, दूसरी तरफ़ बंधन भी उतना ही अंटने लगा। इस कारण हरिमोहन लड़के की अपेक्षा बड़े भाई पर ही अधिकाधिक क्रुद्ध होने लगे—उनके बारे में रंग-बिरंगी झूठी-सच्ची कितनी ही निन्दा की बातों से मुहल्ले को पूरने लगे।

सिर्फ़ मत-विश्वास की ही बात होती तो हरिमोहन को आपत्ति नहीं होती; मुर्गी खाकर लोकसमाज में उसे पाठा कहकर परिचय देना भी वे सह सकते थे; किन्तु ये लोग तो इतनी दूर चले गए थे कि

मिथ्या की सहायता से भी इनका उद्धार करने की गुंजाइश नहीं रह गई थी। जो बात सबसे ज्यादा खटकी, उसे ही यहां कहता हूं।

जगमोहन के नास्तिकधर्म का एक प्रधान अंग था लोगों की भलाई करना। इस भलाई करने में अन्य रस चाहे जो हो, एक प्रधान रस यह था कि नास्तिक आदमी जब सचमुच ही लोगों की भलाई करने जाता है, तो उसमें ख़ालिस नुक़सानी छोड़ और कुछ भी हाथ नहीं आता—न पुण्य, न पुरस्कार, न किसी देवता अथवा शास्त्र की बख्शीश का विज्ञापन और न उनकी क्रोध से रंगी आंखें। अगर कोई पूछता, अधिक से अधिक लोगों के अधिक से अधिक सुखसाधन में आपकी अपनी ग़रज़ आख़िर कौनसी है, तो वे कहते, कोई ग़रज़ नहीं, यही मेरी सबसे बड़ी ग़रज़ है।—शचीश से कहते, देख बेटा, हम लोग नास्तिक हैं, इसी गौरव को ऊंचा रखने के लिये हमें बिल्कुल निष्कलंक-निर्म्मल रहना होगा। हम और कुछ भी नहीं मानते, इसीसे अपने विश्वासों को मानने पर हमारा इतना ज़ोर है।

अधिक से अधिक लोगों के अधिक से अधिक सुखसाधन में उनका प्रधान चेला था शचीश। मुहल्ले में चमड़े की कुछ बड़ी-बड़ी आढ़ती गोदामें थीं। वहां के सब मुसलमान व्यापारियों और चमारों को लेकर चाचा-भतीजे कुछ इस प्रकार घोर हितानुष्ठान में जुट गए कि हरिमोहन के मस्तक का चंदन-टीका अग्नि-शिखा की तरह उनके मग़ज़ में लंकाकांड घटित करने का उपक्रम करने लगा। बड़े भाई के निकट शास्त्र अथवा आचार की दुहाई देने से फल उल्टा होगा, इस कारण उन्होंने पैतृक सम्पत्ति की बेजा फ़िज़ूलख़र्ची की

शिकायत की। बड़े भाई ने कहा, तुमने मोटे-मुस्तण्डे पंडे-पुरोहितों के पीछे जितना रुपया बहाया है, पहले मेरा ख़र्च वहां तक पहुंच जाए, पीछे तुम्हारे साथ हिसाब-किताब हो जाएगा।

घर के लोगों ने एक दिन देखा कि जिस हिस्से में जगमोहन रहते हैं, उसमें एक बड़ी भारी दावत का आयोजन हो रहा है। पकाने और परोसनेवाले सब मुसलमान हैं। हरिमोहन क्रोध से तिलमिलाते हुए शचीश को पुकारकर बोले, तू क्या आज अपने सब सगे चमारों को यहां बुलाकर खिलानेवाला है?

शचीश बोला, मेरी क्या सामर्थ्य है! हैसियत होती तो खिलाता, लेकिन मेरे पास तो पैसा है नहीं। बड़े चाचा ने ही उन लोगों को न्यौता दिया है।

पुरन्दर क्रोध से छटपटाता हुआ घूम रहा था; कह रहा था, वे लोग कैसे इस घर में आकर खाते हैं सो मैं देख लूंगा!

हरिमोहन ने भाई के पास आपत्ति पेश की। जगमोहन बोले, अपने ठाकुरजी को तुम रोज़ भोग चढ़ाते हो, मैं आधी बात भी नहीं कहता; मैं आज अपने ठाकुर को भोग अर्पण करने जा रहा हूं, तुम इसमें विघ्न मत डालना।

तुम्हारे ठाकुर?

हां, मेरे ठाकुर।

तुम क्या ब्राह्म हो गए हो?

ब्राह्म लोग निराकार को मानते हैं जिसे आंखों देखा नहीं जा सकता। तुम लोग साकार को मानते हो जिसे कानों सुना नहीं जाता। हम लोग सजीव को मानते हैं जिसे आंखों देखा जा सकता

है, कानों सुना जा सकता है—जिसे विश्वास किए बिना रहा नहीं जाता।

यही चमार-मुसलमान तुम्हारे देवता हैं ?

हां, यही चमार-मुसलमान। मेरे देवता की एक आश्चर्यजनक सामर्थ्य तुम यहीं प्रत्यक्ष देख सकते हो कि सामने भोग सामग्री अर्पण करने पर वे अनायास ही उसे हाथ से उठाकर खा लेते हैं। तुम्हारा कोई देवता यह नहीं कर सकता। मुझे इसी अद्‌भुत-रहस्य को देखते हुए बहुत आनन्द आता है, इसीसे अपने ठाकुर को अपने घर बुलाया है। देवता को देखने की तुम्हारी आखें अगर अंधी न होतीं तो तुम इस बात से ख़ुश ही होते।

पुरन्दर ने बड़े चाचा के पास जाकर ख़ूब ऊंची आवाज़ में कड़ी-कड़ी बातें सुनाईं और जताया कि आज वह एक घोर कांड कर डालने वाला है।

जगमोहन ने हंसकर कहा, अरे ओ रे बानर, मेरे देवता कितने बड़े जाग्रत देवता हैं सो उनकी देह में हाथ लगाते ही तू समझ जाएगा, मुझे कुछ भी करना नहीं पड़ेगा।

पुरन्दर चाहे जितना ही छाती फुलाकर क्यों न घूमे, है वह अपने बाप से भी ज्यादा डरपोक। जहां वह शान दिखा पाता है, वहीं उसका ज़ोर चलता है। मुसलमान पड़ोसियों को छेड़ने की उसे हिम्मत नहीं हुई। आकर शचीश को ही गाली देने लगा। शचीश अपनी दोनों अद्‌भुत आखें उसके मुख पर स्थिर करके चुपचाप ताकता रहा, आधी बात भी नहीं बोला। कहने की आवश्यकता नहीं कि उस दिन का भोज निर्विघ्न समाप्त हो गया।

४

इस बार हरिमोहन भाई के साथ कमर कसकर भिड़ पड़े। जिस संपत्ति के सहारे इनकी गिरिस्ती चल रही थी, वह थी देवोत्तर संपत्ति। जगमोहन विधर्मी आचारभ्रष्ट हैं, अतः सेवा के अयोग्य हैं—इस बात पर हरिमोहन ने ज़िला-अदालत में नालिश रुजू कर दी। मातबर गवाहों की कमी नहीं थी, मुहल्ले-भर के लोग साक्षी देने के लिये तैयार थे।

किसी अधिक कौशल की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। जगमोहन ने अदालत में साफ़ ही साफ़ स्वीकार किया कि वे देवी-देवता नहीं मानते; खाद्य-अखाद्य का विचार नहीं करते; मुसलमान लोग ब्रह्म के किस स्थान से पैदा हुए हैं, सो उन्हें नहीं मालूम; और उनके साथ खाने-पीने में भी उन्हें कोई रुकावट नहीं।

मुंसिफ़ ने जगमोहन को 'सेवक'-पद के अयोग्य क़रार दिया। जगमोहन के पक्ष के क़ानूनदां लोगों ने आशा दिलाई कि यह फ़ैसला हाईकोर्ट तक नहीं टिक सकता। किंतु जगमोहन ने अपील करना नामंज़ूर कर दिया। कहा, जिन ठाकुरजी को मैं मानता नहीं, उन्हें भी क़ानून की मदद से छलना मुझे पसन्द नहीं। देवता को मानने की सद्‌बुद्धि जिन्हें है, देवता को वंचित करने की धर्मबुद्धि भी उन्हीं लोगों को होगी।

मित्रों ने पूछा, खाओगे क्या?

कुछ भी न जुटा तो धूल फांकूंगा।

इस मामले की जीत के उपलक्ष्य में धूमधाम करने की इच्छा हरिमोहन की क़तई नहीं थी। वे डरते थे कि कहीं बड़े भैया के अभिशाप से कोई कुफल न घट बैठे। किंतु पुरन्दर के मन में यह आग अब भी भड़क रही थी कि वह उस दिन घर से चमारों को भगा नहीं पाया था। किसके देवता जाग्रत देवता हैं सो इस बार तो प्रत्यक्ष ही मालूम हो गया! इसीलिये पुरन्दर ने डंका पिटवाकर मुहल्ले-भर को सिर पर उठा लिया। उस दिन जगमोहन के पास उनका कोई एक दोस्त मिलने आ रहा था। उसे कुछ भी पता न था; उसने पूछा, अजी मामला क्या है?—जगमोहन बोले, आज हमारे ठाकुरजी का धूमधाम के साथ विसर्जन किया जा रहा है—उसीका बाजा-गाजा है यह!—पुरन्दर ने खुद ही उद्योग करके दो दिन ब्राह्मण-भोजन भी करा दिया। सभी पुलकित कंठ से घोषणा करने लगे कि पुरन्दर इस वंश का कुल-प्रदीप है।

दोनों भाई न्यारे हो गए, कलकत्ते के पुराने पैत्रिक घर में प्राचीर खड़ी हो गई।

धर्म के मामले में चाहे जो हो, रुपये-पैसे खाने-पहिनने के बारे में मनुष्य में एक स्वाभाविक सद्बुद्धि और समझदारी होती है, इस विश्वास से हरिमोहन के मन में मानवजाति के प्रति एक प्रकार को आश्वस्त श्रद्धा थी। उन्हें सोलहों आने इतमीनान था कि इस बार उनका बेटा निःस्व जगमोहन को छोड़कर, कम से कम आहार की गंध से ही, उनके सोने के पिंजड़े में पकड़ाई दे जायगा। किंतु बाप की धर्मबुद्धि अथवा कर्मबुद्धि में से बेटे ने एक भी नहीं पाई—इसका शचीश ने साक्षात् परिचय दिया। वह अपने बड़े चाचा के साथ ही

बना रहा। जगमोहन सदा से शचीश को इस तरह बिल्कुल अपना ही मानने के अभ्यासी हो गए थे कि आज इस बंटवारे के दिन भी शचीश जो उनके हिस्से में पड़ गया, सो इससे उन्हें तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। किंतु हरिमोहन अपने भैया को ख़ूब अच्छी तरह ही पहचानते थे। उन्होंने लोगों के निकट यह फैलाना शुरू किया कि जगमोहन शचीश को अपने पास अटकाकर अपने अन्नवस्त्र का सुभीता करने का कौशल खेल रहे हैं। उन्होंने अत्यंत साधु बनकर प्रायः डबडबाई आंखों से सबके निकट अर्ज़ की कि भैया को क्या मैं खाने-पहिरने की तकलीफ़ दे सकता हूं? लेकिन वे मेरे लड़के को अपनी मुट्ठी में रखकर यह जो शैतानी चाल खेल रहे हैं सो इसे मैं किसी भी तरह सह नहीं सकता। देखूं आख़िर कितने बड़े चालाक हैं वे!

बात जब मित्रों की ज़बानी अंत में जगमोहन के कानों तक पहुंची तो वे सहसा चौंक उठे। कोई ऐसी बात भी उठ सकती है जिसका उन्होंने कभी ख्याल भी नहीं किया था—यह सोचकर उन्होंने अपने ही को धिक्कार दिया। शचीश से बोले, गुडबाई शचीश!

शचीश समझ गया कि जिस व्यथा के कारण जगमोहन ने विदा की यह वाणी उच्चरित की है, उसपर और कोई दलील नहीं चल सकती। जन्म से लेकर आज अट्ठारह बरस तक के अटूट संस्रव से शचीश को विदा लेनी पड़ी। जब वह अपना संदूक़-बिस्तरा गाड़ी पर लदवाकर उनसे दूर चला गया, तो जगमोहन दरवाज़े बंद करके अपने कमरे में जाकर फ़र्श पर ही लंबे हो रहे। सांझ घनी हो आई,

उनके पुराने नौकर ने घर में रोशनी करने के लिये कपाटों पर थपकी भी दी, किंतु कोई उत्तर नहीं मिला।

हाय रे 'प्रचुरतम मनुष्यों के प्रभूततम सुखसाधन'! मनुष्य के विषय में विज्ञान की यह पैमाइश घटती जो नहीं! सिर की गिनती के समय जो मनुष्य केवल एक है, वही हृदय के भीतर संपूर्ण गणना से परे है। शचीश को क्या कभी एक-दो-तीन के कठघरे में फेंका जा सकता है? उसने तो जगमोहन की छाती विदीर्ण करके समस्त जगत को असीमता से जैसे छा लिया हो!

शचीश ने गाड़ी बुलवाकर उसपर अपनी चीज़-वस्तु क्यों लदवाई, यह बात भी जगमोहन ने नहीं पूछी। घर के जिस हिस्से में उसके बाप रहते थे वह उस तरफ़ नहीं गया, जाकर ठहरा अपने एक मित्र के बोर्डिंग में। अपना ही लड़का भला क्योंकर पराया हो जा सकता है, यही सोचकर हरिमोहन बार-बार आंसू बरसाने लगे। उनका हृदय अत्यंत कोमल था। घर का बंटवारा होने के बाद पुरन्दर ने ज़िद करके अपने हिस्से में ठाकुरजी की प्रतिष्ठा कराई। सुबह-शाम शंख-घड़ियाल के तुमुल कोलाहल से जगमोहन के कान बहरे हुए जा रहे हैं, यही कल्पना करके वह ख़ुशी से उछलता फिरता।

शचीश ने एक प्राइवेट-ट्यूशन कर ली और जगमोहन ने किसी एन्ट्रेन्स स्कूल की हेड्मास्टरी जुटा ली। उधर हरिमोहन और पुरन्दर इन दोनों नास्तिक शिक्षकों के हाथों से भले आदमियों के घर के बच्चों की रक्षा के लिये भरपूर चेष्टा करने लगे।

५

कुछ दिन बाद शचीश एक रोज़ दुतल्ले पर जगमोहन के पढ़ने-लिखने के कमरे में आकर उपस्थित हुआ। दोनों में प्रणाम-आशीष की प्रथा नहीं थी। जगमोहन ने शचीश का आलिंगन करके उसे चौकी पर बिठाया और पूछा, क्या ख़बर है ?

एक ख़ास ख़बर थी।

ननीबाला अपनी विधवा मां के साथ अपने मामा के यहां आश्रय लिए हुए थी। जितने दिन मां ज़िन्दा रही, कोई विपद नहीं घटी। थोड़े दिन हुए मां मर गई है। ममेरे भाई दुश्चरित्र हैं। उन्हींका कोई दोस्त ननीबाला को उनके आश्रय से निकालकर ले गया था। कुछ दिन बाद उसे ननी पर शक होने लगा और उसी ईर्ष्या के कारण उसने ननी के अपमान की कोई सीमा नहीं रखी है। जिस घर में शचीश पढ़ाने जाता है उसीके बाज़ू के घर में यह काण्ड हुआ है। शचीश उस हतभागिनी का उद्धार करना चाहता है। लेकिन उसके पास न तो पैसा-कौड़ी है और न घर-द्वार, इसीसे वह बड़े चाचा के पास आया है। इधर लड़की के संतान-संभावना भी है।

जगमोहन तो एकबारगी आग हो उठे; उस आदमी को अगर पा जाएं तो उसकी खोपड़ी रंग देंगे—कुछ ऐसा ही उनका भाव था। ऐसे मामलों में सब तरफ़ से शांत होकर सोचने-विचारनेवाले आदमी वे नहीं हैं। एकदम ही कह उठे, अच्छा तो है, मेरा लायब्रेरीवाला कमरा ख़ाली है, उसे वहीं रख देंगे।

शचीश चकित होकर बोला, लायब्रेरीवाला कमरा? लेकिन किताबें?

जितने दिन काम नहीं जुटा था, जगमोहन ने किताबें बेंच-बचकर दिन काटे थे। इस समय जो थोड़ी-बहुत किताबें बाक़ी थीं वे उनके सोने के कमरे में असानी से समा सकती थीं।

जगमोहन ने कहा, लड़की को अभी जाकर लिवा लाओ।

शचीश ने कहा, साथ ही लेता आया हूं, वह नीचे के कमरे में बठी है।

जगमोहन तूफ़ान को तरह कमरे में प्रवेश करके अपने मेघगंभीर स्वर में बोले, आओ मां आओ! धूल में क्यों बैठी हो?

लड़की मुंह में आंचल ठूंसकर सिसक-सिसककर रोने लगी।

जगमोहन की आंखों में सहज ही पानी नहीं आता; तब भी आज वे डबडबा आईं। शचीशं से बोले, शचीश, आज यह बच्ची जिस लज्जा को वहन कर रही है, वह मेरी-तुम्हारी लज्जा ही है। आहा, उस पर इतना बड़ा बोझा भला डाला किसने?—मां, मेरे निकट तुम्हारी लाज नहीं टिकेगी। मुझे मेरे स्कूल के लड़के 'पगला जगाई' कहा करते थे, आज भी मैं वही पागल हूं—यह कहते हुए जगमोहन ने निःसंकोच लड़की के दोनों हाथ पकड़कर उसे धरती से उठाकर खड़ा किया; सिर से उसका घूंघट खिसक पड़ा।

नितान्त कच्चा मुख है, कच्ची उमर, कलंक का तो लेश चिह्न भी उसपर नहीं दीखता! फूल पर धूल बैठ जाने से भी जैसे उसकी आंतरिक शुचिता दूर नहीं होती, वैसे ही इस शिरीष-कोमल लड़की की भीतरी पवित्रता का लावण्य तो मिटा ही नहीं है। उसकी

दोनों कातर आंखों में आहत हरिणी की भीत दृष्टि है, उसकी देह-लता में लज्जा का सहज संकोच है; किन्तु इस समूची सकरुणता में कालिमा तो कहीं मिलती हो नहीं।

ननीबाला को जगमोहन अपने ऊपर के कमरे में ले जाकर बोले, मां यह देखो मेरे घर की श्री! सात जनम झाड़ू नहीं पड़ो, सब उलटा-पुलटा पड़ा है। और मेरी बात अगर पूछो तो कब नहाता हूं, कब खाता हूं, कुछ ठीक-ठिकाना नहीं। तुम आई हो तो मेरे घर को शोभा लौट आएगी और पगला जगाई भी शायद आदमी बन बैठेगा।

मनुष्य कितनी दूर तक मनुष्य का अपना होता है सो आज तक कभी ननीबाला ने अनुभव नहीं किया था—मां के रहते भी नहीं। कारण, मां तो उसे केवल लड़की की दृष्टि से देखती नहीं थी, देखती थी विधवा लड़की की नज़र से; अतएव वह रिश्ता आशंका के छोटे-छोटे चुभीले कांटों से भरा हुआ था। किन्तु जगमोहन संपूर्ण अपरिचित होकर भी ननीबाला के समूचे भले-बुरे का आवरण पार करके उसे इस तरह सब प्रकार कैसे ग्रहण कर सके, यही आश्चर्य है।

जगमोहन ने एक बूढ़ी दासी रख दी और ननीबाला को कहीं भी किसी तरह सकुचने नहीं दिया। ननी को सबसे बड़ा भय यह था कि जगमोहन उसके हाथ का खाएंगे भी या नहीं—वह पतिता जो है। किन्तु हुआ यह कि जगमोहन उसके हाथ का छोड़ और खाना ही नहीं चाहते; वह स्वयं बनाकर जब तक पास बैठ करन खिलाए तब तक वे खाएंगे ही नहीं, यही उनका प्रण था।

जगमोहन जानते थे, इस बार निन्दा की एक और भी विकट थाली आनेवाली है। ननी भी इसे समझ रही थी और इसीसे इस

तरफ़ से उसके भय की कोई सीमा नहीं थी। दो-चार दिन के भीतर ही श्रीगणेश हो गया। दासी ने पहले ननी को जगमोहन की कन्या समझा था; पीछे वही एक दिन आकर ननी से जाने-सब क्या-क्या कह गई और जवाब देकर चलती बनी। जगमोहन की बात सोचकर ननी का मुंह सूख आया। जगमोहन बोले, मां, मेरे घर में पूर्णचन्द्र का उदय हुआ है इसलिये निन्दा का ज्वार उठने का वक्त भी आ गया समझो, किन्तु लहरें कितनी भी गंदली क्यों न हों, मेरी चांदनी पर तो दाग़ नहीं छोड़ सकतीं

जगमोहन की एक बुआ हरिमोहन के घर-तरफ़ से आकर बोलीं, छिः छिः जगाई, यह कैसा काण्ड? पाप को घर से फ़ौरन विदा कर दे!

जगमोहन ने कहा, तुम लोग धार्मिक हो, इसीलिये ऐसी बातें कह सकती हो, किन्तु पाप को अगर विदा कर दूं तो मुझ पापिष्ठ की क्या गति होगी?

रिश्ते की एक नानी आकर बोलीं, छोकरी को अस्पताल भेज दे, हरिमोहन सब खरचा सहने के लिये तैयार है।

जगमोहन बोले, मां जो ठहरी! रुपये-पैसे की सुविधा की ग़रज़ से बैठे-ठाले मां को अस्पताल भेज दूं—यह कैसी तजवीज़ है हरिमोहन की?

मातामही गाल पर हाथ धरकर बोलीं, मां किसे कहता है रे?

जगमोहन बोले, जीव को जो गर्भ में धारण करती हैं उन्हें! जो प्राण संशय में डालकर शिशु को जन्म देती हैं उन्हें! उस शिशु के पाषंडी बाप को तो मैं बाप नहीं कहता। वह बेटा तो सिर्फ़ विपदा-भर बुला लाता है, उसे खुद तो कोई झंझट ही नहीं।

हरिमोहन ने जब सब सुना तो उनको सारी देह घृणा से जैसे कंटकित हो आई। गृहस्थ के घर की दीवार के उसी पार—बाप-दादों के पुश्तैनी अंतःपुर में—एक भ्रष्टा छोकरी इस तरह निवास करेगी, इसे भला किस तरह बर्दाश्त किया जा सकता है? इस पाप में शचीश घनिष्ठ रूप से लिप्त होगा और उसके बड़े चाचा इसमें उसे प्रश्रय दे रहे होंगे, इस बात पर विश्वास करते हरिमोहन को ज़रा भी विलंब या संकोच नहीं हुआ। खूब ज़ोर-शोर से ही उन्होंने सब तरफ़ इसका डंका पीटना शुरू किया। जगमोहन ने इस अन्याय या निन्दा को कम करने की ज़रा भी कोशिश नहीं की। उन्होंने कहा, हम नास्तिकों के धर्मशास्त्र में अच्छे काम के लिये निंदा के नरकभोग का विधान है।—जनश्रुति जितने ही नये-नये रंगों में नये-नये रूप धरने लगी, जगमोहन उतने ही उच्च हास्य के साथ शचीश के सहित उसका आनन्द उपभोग करने लगे। ऐसे कुत्सित व्यापार को लेकर भतीजे के साथ इस तरह का काण्ड भी किया जा सकता है, इसे हरिमोहन अथवा उन्हींके समान भद्रश्रेणी के किसी भी व्यक्ति ने जीवन में कभी नहीं सुना था!

जगमोहन घर के जिस हिस्से में रहते हैं, बंटवारे के बाद से उस तरफ़ पुरन्दर की छाया भी नहीं फटकती। किन्तु धर्म की ख़ातिर उसने प्रतिज्ञा की कि पहले उस छोकरी को मुहल्ले से बाहर खदेड़ेगा, पीछे और कोई बात होगी।

जगमोहन जब स्कूल जाते तब घर में प्रवेश करने के सब रास्ते अच्छी तरह बंद कर जाते और जब भी ज़रा-सी फ़ुरसत पाते, तभी एक बार आकर देख-सुन-जाते थे।

एक दिन दुपहरिया में पुरन्दर अपनी छत की सफ़ील की तरफ़ से नसैनी लगाकर जगमोहन के हिस्से की ओर कूद आया। उस समय ननोबाला खा-पीकर अपने कमरे में सोई पड़ी थी ; द्वार खुला ही हुआ था।

पुरन्दर घर में घुसते ही निद्रिता ननो को देखकर विस्मय और क्रोध से गरज उठा,वही तो ! तू यहां !!

जागते ही पुरन्दर को देखकर ननी का मुंह तो एकबारगी फक् हो गया। वह भागे या टूटीफूटी कोई बात भी कह सके, इतनी शक्ति ही उसमें नहीं थी। पुरन्दर ने क्रोध से थरथराते हुए पुकारा—ननी, ननी !

इसी बीच जगमोहन पीछे से कमरे में दाखिल हुए और चीख़कर बोले, निकल ! निकल यहां से !

पुरन्दर क्रुद्ध बिलौटे की तरह गुस्से से फुफकारने लगा। जगमोहन ने कहा, अगर नहीं जाता तो मैं पुलिस को ख़बर देता हूं।

पुरन्दर ननी की तरफ़ आंखों से आग बरसाता हुआ चला गया। ननो मूर्छित हो कर गिर पड़ी।

जगमोहन समझ गए कि मामला क्या है। शचीश को बुलाकर पूछने से मालूम हुआ, शचीश पहले ही से जानता था कि ननी को पुरन्दर ने ही नष्ट किया है। कहीं क्रोध में आकर बड़े चाचा कोई टंटा न कर बैठें, इसीलिये उसने उनसे कुछ भी नहीं कहा था। शचीश मन ही मन जानता था कि कलकत्ता शहर में अन्यत्र कहीं पुरन्दर के उत्पात से ननी को छुटकारा नहीं ; केवल बड़े चाचा के घर में ही वह यथासंभव कभी पदार्पण नहीं करेगा।

ननी जैसे किसी भय की हवा से कुछ दिन बांस के पत्तों की तरह कांपती रही। पीछे उसने एक मरे हुए शिशु को जन्म दिया।

पुरन्दर ने एक दिन ननी को लात मारकर आधी रात के समय घर से बाहर कर दिया था। इसके बाद बहुत खोज-बीन करने पर भी उसे नहीं पा सका। इसी समय बड़े चाचा के घर में ही जब उसने उसे देखा तो उसके सिर से पैर तक ईर्ष्या की आग लग गई। उसे लगा कि एक तो शचीश अपने ही लिये ननी को उसके हाथ से छुड़ा लाया है, दूसरे, पुरन्दर का ही विशेषरूप से अपमान करने के लिये उसके घर के बिल्कुल बाज़ू में ही उसे रख छोड़ा है। यह तो किसी भी तरह सहा नहीं जा सकता। बात हरिमोहन को भी मालूम हो गई। इसे हरिमोहन को जना देने में पुरन्दर को कुछ भी शर्म नहीं आई। पुरन्दर की इस सम्पूर्ण दुष्प्रकृति के प्रति हरिमोहन का एक तरह से स्नेह ही था।

शचीश अपने ही बड़े भाई से इस लड़की को छीन ले, यह बात उन्हें बहुत ही अशास्त्रीय तथा अस्वाभाविक लगी। पुरन्दर इस असह्य अपमान और अन्याय के हाथ से अपना प्राप्य वापस पा सके, यही उनके मन का एकांत संकल्प हो उठा। उन्होंने ख़ुद ही बहुत रुपये ख़र्च करके कहीं से ननी की एक जाली मां संग्रह करके उसे जगमोहन के पास रोने-मिनमिनाने के लिये भेज दिया। जगमोहन ने उस समय कुछ ऐसा रुद्र रूप धरकर उसे खेदा कि वह फिर कभी इस तरफ़ फटक भी नहीं सकी।

ननी दिनों-दिन म्लान होकर जैसे छाया की तरह विलीन होने का उपक्रम कर रही थी। उन दिनों बड़े दिन की छुट्टियां थीं।

जगमोहन कभी पल-भर के लिये भी ननी को अकेली छोड़कर बाहर न जाते थे। एक दिन संध्या समय वे उसे स्काट की किसी कहानी का बंगला में तर्जुमा करके सुना रहे थे कि तभी पुरन्दर एक और युवक को साथ लिए आंधी की तरह कमरे में घुस आया। उन्होंने जैसे ही पुलिस को ख़बर देने का ख्याल किया कि वह युवक बोला, मैं ननी का भाई हूं, उसे लिवाने आया हूं।

उसकी बात का कोई जवाब न देकर जगमोहन ने पुरन्दर को कंधे पर उठाया और तौलते हुए ठेलकर ज़ीने तक ले आए; वहां से उसे एक ही धक्के में उन्होंने नीचे की तरफ़ रवाना कर दिया। फिर उस युवक से बोले, पाषंडी, शर्म नहीं आती? रक्षा करने के वक्त तुम ननी के कोई नहीं और सर्वनाश करने के लिये उसके भाई बन बैठे?—उस आदमी ने वहां से तत्काल प्रस्थान करने में देरी नहीं की, लेकिन दूर से ही चीत्कार करके वह जताता गया कि पुलिस की मदद से अपनी बहन का उद्धार करके वह ले ही जायगा। वह आदमी सचमुच ही ननी का भाई था। पुरन्दर उसे यह साबित करने के लिये बुला लाया था कि शचीश ही ननी के पतन का कारण है।

ननी मन ही मन प्रार्थना करने लगी, मां धरित्री, दो टूक हो जाओ।

जगमोहन ने शचीश को बुलाकर कहा, मैं ननी को लेकर पच्छिम के किसी शहर में चला जाता हूं, वहां जैसे भी होगा कुछ जीविका जुटा लूंगा। जिस तरह उत्पात शुरू हुआ है, उससे यहां रहते यह लड़की बचेगी नहीं।

शचीश बोला, बड़े भैया जब जूझ ही गए हैं, तब आप कहीं जाएं, उत्पात साथ-साथ जाएगा।

तब उपाय ?

उपाय है। मैं ननी के साथ ब्याह किए लेता हूं।

ब्याह ?

हां, सिविल-विवाह।

जगमोहन ने प्यार से शचीश को छाती से लगाकर बलपूर्वक दबा लिया। उनकी आंखों से झर-झर करके आंसू गिरने लगे। अपनी इतनी बड़ी उम्र में उन्होंने इस तरह कभी आंसू नहीं बहाए थे।

६

बंटवारे के बाद हरिमोहन एक दिन के लिये भी जगमोहन को देखने नहीं आए थे। उस दिन रूखे-सूखे उलझे-सुलझे आकर हाज़िर हुए। बोले, भैया, यह कैसी सत्यानासी ख़बर सुन रहा हूं ?

जगमोहन ने कहा, सत्यानास ही होने वाला था, अब तो उससे रक्षा का उपाय हो रहा है।

भैया, शचीश तुम्हारे लड़के के समान है ; उसके साथ तुम उस पतिता की शादी करा दोगे ?

शचीश को मैंने अपने बच्चे-जैसा मानकर ही बड़ा किया है, आज वह सार्थक हुआ, उसने हमारा मुख उज्ज्वल कर दिया।

भैया, मैं तुमसे हार मानता हूं—अपनी आमदनी में से मैं आधी तुम्हारे नाम लिखे देता हूं। मेरे साथ ऐसा भयानक बदला मत चुकाना!

जगमोहन चोकी छोड़कर उठ खड़ हुए, बोले, सच तो कहते हो ! अपनी जूठी पत्तल का आधा मेरी तरफ़ फेंककर कुत्ते को बहलाने आए हो ! मैं तुम्हारी तरह धार्मिक नहीं हूं, नास्तिक हूं, इसे याद रखना। मैं ग़ुस्से का बदला भी नहीं लेता, दया की भीख भी नहीं !

हरिमोहन शचीश के बोर्डिंग पहुंचे। उसे निराले में ले जाकर बोले, यह क्या सुनता हूं ? तुझे क्या मरने की भी जगह न जुटी, इस तरह कुल में कलंक लगाने चला ?

शचीश बोला, कुल में लगे हुए कलंक को मिटाने के लिये ही तो यह प्रयत्न कर रहा हूं, वर्ना ब्याह करने का शौक़ मुझे नहीं।

हरिमोहन बोले, तुझे क्या तनिक-सा भी धर्मज्ञान नहीं है ? वह लड़की तेरे भाई की स्त्री के समान है, उसे तू—

शचीश बात काटकर बोल उठा, स्त्री के समान ? ऐसी बात भी ज़बान पर मत लाना !

इसके बाद तो हरिमोहन के जो मुंह में आया वही कहकर वे उसे गाली बकने लगे। शचीश ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इधर हरिमोहन की एक और भी मुश्किल हो गई है ; पुरन्दर निलज्ज की तरह कहता फिर रहा है कि यदि शचीश ननी से शादी करेगा तो मैं आत्महत्या करके प्राण दे दूंगा।—उधर पुरन्दर की स्त्री कहती है कि अगर सच-मुच ऐसा हो तब तो विपदा ही कट जाए, लेकिन वह काम तुम्हारे बूते का नहीं !—हरिमोहन पुरन्दर की इस धमकी पर सचमुच ही विश्वास करते हों सो नहीं, फिर भी उनकी शंका दूर नहीं होती।

शचीश इतने दिन ननी से बचकर ही चलता था—अकेले तो एक दिन भी मिलना नहीं हुआ ; उसके साथ कभी दो बातें भी हुई होंगी,

इसमें संदेह है। ब्याह की बात जब ठीक हो गई तब जगमोहन ने शचीश से कहा, विवाह के पहले एक दिन निराले में ननी के साथ अच्छी तरह बातचीत कर लो, एक बार दोनों को एक दूसरे का मन जान-पहचान लेना ज़रूरी है।

शचीश राज़ी हो गया।

जगमोहन ने दिन ठीक कर दिया। ननी से बोले, मां, आज तो तुम्हें मेरे मन-मुताबिक सजना होगा।

ननी ने लाज से मुंह नीचा कर लिया।

ना, मां, लजाने काम से नहीं चलेगा, मेरे मन की बड़ी भारी साध है कि तुम्हें आज सजी हुई देखूंगा ; इसे तुम्हें पूरा करना ही होगा।—यह कहकर सितारे-जड़ी बनारसी साड़ी कुर्ती ओढ़नी आदि जो कुछ वे अपनी पसंद से ख़रीद लाए थे, सब ननी के हाथों सौंप दिया।

ननी ने भूमिष्ठ होकर पावों की धूलि लेकर उन्हें प्रणाम किया। व्यस्त होकर पांव हटाते हुए जगमोहन बोले, देखता हूं इतने दिनों में भी तुम्हारा भक्ति मिटा नहीं पाया! मैं, न-हो, उम्र में बड़ा ही पड़ गया, किंतु मां, तुम तो मां होकर मुझसे बड़ी हो—कहते हुए उसका माथा चूमकर बोले, भवतोष के घर आज मेरा निमन्त्रण है, लौटते हुए कुछ रात हो जाएगी।

ननी ने उनका हाथ थामकर कहा, बाबा, तुम आज मुझे आशीर्वाद दो!

मां, मैं स्पष्ट देख रहा हूं, बुढ़ापे में तुम इस नास्तिक को भी आस्तिक बनाकर ही छोड़ोगी। मैं आशीर्वाद में अधेला-भर भी विश्वास नहीं करता किंतु तुम्हारा यह मुंह देखकर सचमुच ही

आशीर्वाद देने की इच्छा होती है!—यह कहते हुए उसकी ठोढ़ी छूकर मुंह ऊपर उठाकर कुछ देर चुपचाप अपलक ताकते रहे—ननी की दोनों आंखों से अविरल आंसू झरने लगे।

संध्या-समय एक आदमी भवतोष के यहां से उन्हें बुलाने के लिये दौड़ा गया। उन्होंने आकर देखा, बिछौने पर ननी की मृत देह पड़ी हुई है। जो कपड़े उन्होंने उसे दिए थे वह उन्हींको पहने हुए है, हाथ में एक चिट्ठी है, सिरहाने शचीश खड़ा हुआ है। चिट्ठी खोलकर जगमोहन ने चटपट पढ़ डाली :

बाबा, हो नहीं सका, मुझे माफ़ करना। तुम्हारी बात सोचकर इतने दिन मैंने प्राणपण कोशिश की, लेकिन उन्हें आज भी भुला नहीं सकी। तुम्हारे श्रीचरणों में शतकोटि प्रणाम।

—पापीष्ठा ननीबाला

शचीश

१

नास्तिक जगमोहन ने अपनी मृत्यु के पूर्व ,एक दिन शचीश से कहा, अगर श्राद्ध करने का शौक़ हो तो वक्त आने पर अपने बाप का कर लेना, किंतु बड़े-चाचा का नहीं।

सो उनकी मृत्यु का विवरण इस प्रकार है :

जिस साल कलकत्ते में प्लेग के प्रथम दर्शन हुए, उस समय प्लेग की अपेक्षा लोग तमग़ाधारी सरकारी चपरासियों से ही अधिक भीत और परेशान थे। हरिमोहन ने मन ही मन सोचा, उनके पड़ौसी चमारों आदि पर यह प्लेग पहले टूटेगी और फिर उन्हींके साथ-साथ पड़ौसी के रिश्ते से अपना भी सहमरण निश्चित है। सो घर छोड़कर भागने से पहले एक बार भाई से जाकर कहा, भैया, बर्दवान ज़िले के कालना नामक स्थान में गंगा-तीर एक घर मिल गया है, अगर—

जगमोहन बोले, ख़ूब! इन लोगों को यहां मौत के मुंह में छोड़कर भला जाया ही कैसे जाएगा?

किन लोगों को?

इन्हीं मुहल्लेवालों को।

—हरिमोहन मुंह बिचकाकर चले गए। शचीश के बोर्डिंग में जाकर उससे बोले, चल!

शचीश ने कहा, मुझे काम है।

चमारों की मुर्दाफ़रोशी का काम न ?

जी हां, अगर ज़रूरत पड़े तो—

जी हां, क्यों नहीं ! अगर ज़रूरत पड़े तो आप अपने चौदह पीढ़ी के पुरखों को भी नरक पठा सकते हैं। पाजी लंपट नास्तिक कहीं का !

घोर कलियुग के दुर्लक्षण देखकर हरिमोहन तो हताश होकर घर लौट आए। उस दिन उन्होंने ग्लानिमोचनस्वरूप लंबे आकार के प्रायः दस्ताभर पीले काग़ज़ों पर बारीक़ हरफ़ों में 'दुर्गा-दुर्गा' लिख डाला।

आख़िर हरिमोहन चले ही गए। मुहल्ले में प्लेग के दर्शन हुए। पीछे कहीं कोई अस्पताल में ले जाकर न डाल दे, इस डर से लोग डाक्टर को भी नहीं बुलाना चाहते थे। जगमोहन स्वयं जाकर प्लेग-अस्पताल देख आए। बोले, बीमारी हुई है तो आदमी ने कोई क़ुसूर तो किया नहीं जो ऐसी बेदर्द सज़ा दी जाए !

सो कोशिश करके उन्होंने अपने ही घर में एक प्राइवेट अस्पताल खुलवाया। शचीश के साथ हम लोग दो-एक जन सेवा-टहल का भार लिए हुए थे। हमारे दल में एक डाक्टर भी थे।

हम लोगों के अस्पताल का पहला रोगी था एक मुसलमान, वह बेचारा मर गया। द्वितीय रोगी स्वयं जगमोहन थे। सो मृत्युशय्या पर लेटे हुए, शचीश से बोले, इतने दिन जिस धर्म को मानता आया, आज उसका अंतिम पुरस्कार भी वसूल कर लिया, मन में कोई खेद नहीं है, बेटा !

शचीश ने जीवन-भर अपने बड़े चाचा को प्रणाम नहीं किया था,

मृत्यु के बाद आज आख़िरी बार उसने उनके पावों की धूलि ली।

इसके बाद जब शचीश से हरिमोहन की भेंट हुई तो बोले, नास्तिक की मौत ऐसी ही होती है!

शचीश ने भी ख़ूब गर्व के साथ कहा, जी हां, ठीक ऐसी ही!

२

एक फूंक में बत्ती बुझा देने से उसका प्रकाश जिस तरह सहसा लुप्त हो जाता है, वैसे ही जगमोहन की मृत्यु के बाद शचीश कहां चला गया, हम लोग जान ही नहीं पाए। अपने बड़े चाचा को शचीश कितना अधिक चाहता था इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वे शचीश के पिता थे, सखा थे, और कहा जा सकता है कि पुत्र भी थे : क्योंकि, अपने बारे में वे इतने आत्मविस्मृत—इतने भुलक्कड़ थे—दुनियादारी के मामलों में इतने नादान—कि उन्हें सब तरह की मुश्किलों से बचाए चलना शचीश का एक प्रधान काम था। इसी तरह शचीश ने भी बड़े-चाचा के भीतर से अपना सभी-कुछ पाया था और उन्हींके भीतर से अपना सभी-कुछ दान भी किया था। शुरू में उनके वियोग की शून्यता ने शचीश को किस तरह अवसन्न कर दिया होगा, इसे ठीक-ठीक सोचा भी नहीं जा सकता। इस असह्य यंत्रणा की दुःसह पीड़ा में शचीश ने बार-बार केवल यही समझने की चेष्टा की थी कि शून्य कभी इस क़दर शून्य नहीं हो सकता। जो संपूर्ण सत्य था वही अब एकबारगी है ही नहीं, ऐसी भयानक रिक्तता और कुछ भी नहीं हो सकती। एक तरफ़ से जो 'ना' है, वही दूसरी तरफ़ से

यदि 'हां' न हो, तो उसी एक ज़रा-सी संधि के भीतर से सारा जगत् गलकर जाने-कहां विलीन हो जायगा।

दो बरस तक शचीश देश-देश भटकता फिरता रहा, कोई ख़बर ही नहीं मिली। अपने दल के साथ हम लोगों ने और भी ज़ोरशोर से काम करना शुरू कर दिया। जो लोग धर्म के नाम पर कुछ भी मानते थे, उनसे हम लोग ज़बर्दस्ती उलझकर, पीछे पड़कर, ख़ाहमख़ाह झगड़ा बिसाहकर उनके हाड़ जलाने लगे और ख़ूब चुन-चुनकर ऐसे सब भले कामों में जुट गए जिनसे देश के भले आदमियों के लड़के हमारे संबंध में एक भी भली बात न कह सकें। शचीश हमारा फूल था। जब वही खिसककर दूर जा पड़ा, तब हमारे सब चुभीले कांटे सहज ही एकबारगी उग्र और उलंग हो पड़े।

३

दो बरस तक शचीश का कोई पता ही नहीं मिला। शचीश की निंदा करने का मुझे कभी जी नहीं हुआ था, किंतु आज मन ही मन यह ख्याल किए बिना मैं भी नहीं रह सका कि शचीश ज़िस सुर में बंधा हुआ था, वह सुर धक्का खाकर नीचे उतर गया है। एक बार किसी संन्यासी को देखकर बड़े-चाचा ने कहा था, "संसार मनुष्य को प्रवाण ख़ज़ाञ्ची की तरह जांच लेता है—शोक की चोट, हानि का आघात, मुक्ति के लोभ की ठोकर देकर। जिनकी आवाज़ मन्दी पड़ती है उन्हें वह दूर फेंक देता है। ये बैरागी लोग वही फेंके हुए खोटे सिक्के हैं, जीवन के कारबार में एकबारगी अचल! और फिर यही लोग

शेख़ी बघारते फिरते हैं कि ख़ुद उन्हींने संसार का त्याग किया है। लेकिन बात दरअसल उल्टी है। जिसमें तनिक-सी भी योग्यता है उसे दुनिया से ज़रा-सा भी टस-से-मस करने की गुंजाइश नहीं। सूखा पत्ता वृक्ष से गिर पड़ता है, इसीलिये कि वृक्ष उसे झरा देता है; वह व्यर्थ की आवर्जना जो है!"

इतने लोगों के रहते क्या अंत में हमारा शचीश ही उस आवर्जना के दल में जा पड़ा? दुःख की कसौटी पर क्या यही लेखा अंकित हो गया कि जीवन की हाट में शचीश की कोई बिसात नहीं?

ऐसे ही समय सुनने में आया कि चटगांव के निकट किसी स्थान में शचीश—हम लोगों का अपना शचीश—लीलानन्द स्वामी के साथ कीर्त्तन में मत्त होकर करताल चटकाते हुए, मुहल्ले-भर को अस्थिर करके नाचता-डोलता फिर रहा है।

एक वह भी दिन था जब मैं किसी भी तरह सोच ही नहीं पाया था कि शचीश-जैसा व्यक्ति क्योंकर नास्तिक हो सकता है। और आज किसी भी तरह समझ में ही नहीं आया कि यह लीलानन्द स्वामी उसे कैसे इस तरह नचाता फिर रहा है।

इधर हम लोग आख़िर मुंह ही कैसे दिखाएं? दुश्मनों का दल हंसे बिना कैसे रहेगा? और हम लोगों ने कोई एकाध दुश्मन तो बनाया नहीं है!

हमारे दल के लोग तो शचीश पर आगबबूला हो गए। बहुतों ने तो यहां तक कह डाला कि वे लोग शुरू से ही जानते थे कि शचीश के भीतर ठोस कुछ भी नहीं, है केवल छूंछी भावुकता!

शचीश को मैं कितना अधिक प्यार करता था सो मुझे ही पहली

बार समझ में आया। हमारे दल की छाती पर उसने इस तरह मृत्युवाण संधान किया, तब भी किसी भी तरह उसपर क्रोध करते मुझसे नहीं बना।

४

मैं लीलानन्द स्वामी की खोज में निकल पड़ा। कितनी नदियां पार कीं, खेत लांघे, रास्तों की ख़ाक छानी, कितनी रातें मोदी की दूकान पर काटीं ; आख़िर एक गांव में पहुंचकर शचीश का पता पाया। तब वक्त दिन के दो बजे के आन्दाज़ रहा होगा।

इच्छा थी कि शचीश को निराले में पाऊं। लेकिन चारा क्या था! चेले के गृह में स्वामीजी ने आश्रय लिया है, उसका आंगन-बरामदा लोगों से भरपूर लोकारण्य बन गया है। समूचा सबेरा कीर्तन में बीता है। जो लोग दूर-दूर से आए हैं उनके खाने-पीने की अच्छी ख़ासी व्यवस्था की जा रही है।

देखते ही शचीश ने दौड़ते हुए आकर मुझे छाती से चिपटा लिया। मैं तो हैरान हो गया, क्योंकि शचीश सदा संयत रहता आया है, स्तब्धता में ही उसके हृदय की गहराई का पता मिलता आया है। आज मुझे ऐसा लगा मानो शचीश ने कोई नशा किया हो।

सेवा के उपरांत स्वामीजी कमरे में विश्राम कर रहे थे। दरवाज़े का एक पल्ला ज़रा-सा खुला था, वहीं से उन्होंने मुझे देखा। गभीर कंठ से पुकार आई, शचीश!

शचीश चटपट कमरे में गया। स्वामीजी ने पूछा, वह कौन है?

शचीश बोला, श्रीविलास, मेरा सखा।

उन दिनों लोगों में मेरा नाम फैलना शुरू हो गया था। मेरी अंगरेज़ी वक्तृता सुनकर किसी अंगरेज़ विद्वान् ने कहा था, 'यह, आदमी इस तरह अंगरेजी बोलता है मानो स्वयं'...ख़ैर, जाने भी दीजिए, उन बातों को लिखकर ख़ाहमख़ाह अपने दुश्मनों की संख्या नहीं बढ़ाना चाहता!

मैं एक धुरन्धर नास्तिक हूं और फ़ी घंटे बीस-पचीस मील की रफ़्तार से ठेठ अंग्रेज़ी-बोली की चार घोड़ोंवाली टमटम को बाक़ायदा हांक सकता हूं, यह बात छात्रसमाज से शुरू करके छात्रों के पितृसमाज तक ख़ासी फैल चुकी थी।

ऐसा जान पड़ा जैसे मेरे आगमन से स्वामीजी ख़ुश हुए हों। उन्होंने मुझसे मिलना चाहा। कमरे में प्रवेश करके मैंने किसी तरह एक नमस्कार निबटा दिया—जिसमें मेरे दोनों हाथ खांड़े की तरह सीधे कपाल तक उठे, लेकिन क्या मजाल कि सिर नीचा हो जाए। हम लोग बड़े-चाचा के चेले ठहरे; हमारा नमस्कार गुणहीन धनुष की तरह अपने नमो-अंश को छोड़कर बुरी तरह सीधा हो गया था।

स्वामीजी ने इसे लक्ष्य किया और शचीश से कहा, ज़रा हुक्का तो सजा लाओ जी शचीश!

शचीश तम्बाकू भरने बैठ गया। उधर वह चिलम पर कोयले की टिकियां जमाने लगा, इधर मेरे हाड़ जलने लगे। कमरे में मैं कहां बैठूं सो कुछ ठीक ही नहीं कर पाया। असबाब के नाम एक तख़्तपोश-भर वहां था जिसपर बड़े ठाठ से स्वामीजी का बिस्तर लगा हुआ था। शायद उसीके एक कोने पर बैठ जाना मुझे ख़ास अनुचित

नहीं जान पड़ता, लेकिन जाने-क्यों मैंने वैसा, नहीं किया, दरवाज़े के पास ही खड़ा रह गया। देखा, स्वामीजी को मालूम है कि मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय की सुप्रसिद्ध 'प्रेमचंद-रायचंद स्कालर्शिप' पानेवाला हूं। बोले, बेटा, यह सच है कि पनडुब्बा मोती निकालने के लिये, समुद्र के तले तक जा पहुंचता है, लेकिन अगर वहीं टिक जाए तब तो ख़ैरियत नहीं! इसीसे मुक्ति के लिये उसे ऊपर आकर ही दम लेनी होती है। अगर बचना ही चाहते हो, बबुआ, तो अब विद्यासमुद्र की तली से निकलकर सूखी धरती पर चढ़ना पड़ेगा। प्रेमचंद-रायचंद वृत्ति तो पा चुके, अबकी प्रेमचन्द-रायचन्द निवृत्ति का स्वाद भी एक दफ़ा ले देखो !

शचीश तंबाकू भरकर, हुक्का हाथों में थमाकर, उनके पेताने की तरफ़ धरती ही पर बैठ गया। स्वामीजी ने तत्काल दोनों पैर उसीकी तरफ़ पसार दिए। शचीश धीरे-धीरे तलवे सुहलाने लगा। यह दृश्य देखकर मुझसे कमरे में ठहरा नहीं गया। मैं समझ गया कि ख़ास मुझे ही चोट पहुंचाने की ग़रज़ से शचीश के ज़रिए हुक्का भरवाया गया है, पांव दबवाए जा रहे हैं।

स्वामीजी आराम करने लगे। सभी अभ्यागतों ने खिचड़ी सेवा की। पांच बजे से जो कीर्तन शुरू हुआ तो फिर रात दस बजे तक वही सिलसिला जारी रहा।

रात में शचीश को अकेले पाकर मैंने कहा, शचीश, जन्म से लेकर आज तक तुम मुक्ति के बीच बड़े हुए हो; आज यह किस बंधन में तुमने अपने को फंसाया है? बड़े-चाचा की मृत्यु क्या इतनी सच्ची मृत्यु हो उठेगी ?

मेरे 'श्रीविलास' नाम के प्रथम दो अक्षरों को उलटकर शचीश, कुछ तो स्नेह के कौतुक से और कुछ मेरे चेहरे की ख़ासियत के कारण मुझे 'विश्री'—कुरूप—कहकर पुकारा करता था। बोला, विश्री, बड़े-चाचा जब जीवित थे तब उन्होंने मुझे जीवन के कर्मक्षेत्र में मुक्ति दी थी, जैसे छोटा बच्चा खेल के आंगन में मुक्ति पाए। मृत्यु के बाद उन्होंने मुझे मुक्ति दी है रस के सागर में, मानो छोटे-से शिशु ने मां की गोद में मुक्ति पाई हो। दिन के समय की उस मुक्ति का उपभोग मैं कर चुका हूं; अब रात के समय की इस मुक्ति को ही क्योंकर छोड़ दूं? ये दोनों ही व्यापार हमारे उन्हीं एक बड़े चाचा के ही घटाए हुए हैं, इसे तुम निश्चित समझना!

मैंने कहा, तुम चाहे जो कहो, शचीश, लेकिन हुक्का भराना, पांव दबवाना—ये सब उपद्रव तो बड़े-चाचा में नहीं थे। मुक्ति का रूप ही ऐसा नहीं होता।—शचीश बोला, वह धरती पर की मुक्ति थी, उस समय बड़े चाचा ने मेरे हाथ-पैरों को कर्मक्षेत्र में संचालित कर दिया था। और यह ठहरा रस का समुद्र, जहां नाव का बंधन स्वीकार कर लेने में ही मुक्ति का रास्ता निश्चित होता है। इसीलिये तो गुरुजी मुझे इस तरह चारों ओर से सेवा-टहल में अटकाकर रखे हुए हैं—मैं उनके पांव दबाकर पार लग रहा हूं!

मैं बोला, तुम्हारी ओर से यह बात सुनने में बुरी नहीं लगती, किंतु जो महाशय तुम्हारी तरफ़ इस तरह अपने पांव पसार सकते हैं, वे—

शचीश ने कहा, उन्हें सेवा कराने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है, इसीलिये तो वे इस तरह सहज भाव से पांव बढ़ा देते हैं; अगर

ज़रूरत होती तो लज्जा का अनुभव करते। ग़रज़ तो दरअसल मेरी है, विश्री!

इतना सुनकर मैं समझ गया कि शचीश आज किसी ऐसे जगत् में है जहां मेरा अस्तित्व एकबारगी नहीं है। भेंट होते ही उसने जो मुझे छाती से कसकर दबा लिया था, वह मैं श्रीविलास नहीं था, था "सर्वभूत"—एक आइडिया-मात्र!

इस तरह की आइडिया-जातीय वस्तु शराब ही की तरह होती है। नशे की विह्वलता में मतवाला व्यक्ति भी इसी तरह जिस-तिसको छाती से चिपटाकर आंसू बरसा सकता है, फिर मैं हुआ तो क्या, और कोई दूसरा हुआ तो क्या! किन्तु इस तरह छाती से लगाने पर मतवाले व्यक्ति को चाहे जितना आनन्द मिले, मुझे तो नहीं मिलता। मैं तो भेदज्ञान-विलुप्त एकाकारता की बाढ़ में केवल एक लहरमात्र नहीं बना रहना चाहता—मैं 'मैं' जो हूं।

और साथ ही यह बात भी मेरी समझ में आ गयी कि तर्क की गुञ्जाइश यहां नहीं है। किन्तु शचीश को छोड़कर चले जाना भी मेरे मान की बात कहां थी! अतएव शचीश के खिंचाव से मैं भी इसी दल के स्रोत के साथ इस गांव से उस गांव उतराता फिरने लगा। धीरे-धीरे नशा मेरे भी सिर चढ़ गया—मैंने भी सबको छाती से लगाया, आंसू बरसाए, गुरु के पांव दाबने लगा। एक दिन हठात्—मालूम नहीं किस आवेश में—शचीश के एक ऐसे आलौकिक रूप के दर्शन मुझे हुए जो रूप किसी विशेष देवता में ही संभव हो सकता है—मनुष्य में नहीं।

५

हम लोगों के समान इतने बड़े-बड़े दो-दो दुर्द्धर्ष, अंग्रेजीदां नास्तिकों को अपने दल में मिला पाने से लीलानन्द स्वामी तो चारों ओर मशहूर हो गए। कलकत्ते में रहनेवाले उनके भक्तगण अबकी उनसे शहर में आकर आसन जमाने के लिये बहुत अनुरोध करने लगे।

अतएव स्वामीजी कलकत्ते आ गए।

उनके एक परम भक्त शिष्य का नाम शिवतोष था। कलकत्ते में स्वामीजी उसीके घर ठहरा करते थे। समूची जमात के साथ उनकी सेवा करना ही शिवतोष के जीवन का सबसे प्रधान आनन्द था।

मरते समय शिवतोष अपना कलकत्ते का मकान और सारी जायदाद गुरु के नाम लिखकर अपनी निःसन्तान तरुणी स्त्री को संपत्ति पर केवल जीवन-स्वत्व दे गया। उसकी इच्छा थी कि यही घर कालान्तर में उनके सम्प्रदाय का प्रधान तीर्थस्थल हो उठे। हम लोग इसी घर में आकर टिके।

जब तक मैं मत्त होकर गांव-गांव घूमता फिरता था, तब तक तो किसी तरह चलता गया, किन्तु कलकत्ते आने पर उस नशे को बहाल रखना मेरे लिये मुश्किल हो उठा। इतने दिन तक मैं मधुर भक्ति-रस के राज्य में था। वहां विश्वव्यापिनी नारी के साथ चित्तव्यापी पुरुष की प्रेमलीला चल रही थी। ग्राम्य पशुओं के हार में, खेवाघाट की सघन वटछाया में, अवकाश के आवेश से छलकतो

हुई दुपहरिया और झिल्लीरव से आकम्पित सांझ को ख़ामोशी में उसी लीला का सुर समाया हुआ था। इतने दिन तक मैं मानो स्वप्न में चलता आया था, मुक्त आकाश-तले कोई बाधा ही नहीं थी। लेकिन अब कठिन कलकत्ते में आते ही सिर मानो कठोर सत्य के साथ टकराया, मनुष्यों की भीड़ का धक्का लगा, बहार टूट गई! किसी दिन इसी कलकत्ते के बोर्डिंग में रात-दिन एक करके पढ़ाई-लिखाई की साधना की थी; गोल-तालाब के तीर बैठकर मित्रों के साथ देश की चिंता की थी; राजनीतिक सम्मेलनों में वालंटियरी की थी; पुलिस के अन्याय-अत्याचार का निवारण करने के प्रयत्न में जेल जाने का आयोजन किया था। यहीं बड़े चाचा के आह्वान पर संकल्प किया था कि समाज की डकैती का जी-जान से मुक़ाबिला करूंगा, सब तरह की ग़ुलामी का जाल तोड़कर देश के लोगों का मन आज़ाद करूंगा। यहीं के मनुष्यों के बीच अपने-पराये, चीन्हे-अनचीन्हे सबोंकी गाली खा-खाकर, जिस तरह पालवाली नाव ज्वार के उल्टे स्रोत की परवाह बिना किए छाती फुलाए चली जाती है, उसी तरह यौवन के आरंभ से लेकर आज तक चला आया हूं। भूख-प्यास सुख-दुःख भले-बुरे की विचित्र समस्याओं के भीतर भटकते हुए मनुष्यों की भीड़-भरे उसी कलकत्ते में, आंसुओं के गीले घूंघट में घुले हुए मधुर-रस की विह्वलता को जगाए रखने के लिये मैं जी-तोड़ परिश्रम करने लगा। प्रति-पल यही ख़्याल मन में उठता कि मैं दुर्बल हूं, अपराध कर रहा हूं, मेरी साधना में ज़ोर नहीं है।—उधर शचीश की तरफ़ ताकता तो ऐसा जान पड़ता कि कलकत्ता शहर दुनिया के भूगोल में कहीं है

भो—ऐसा कोई भाव उसके मुख पर नज़र नहीं आता। मानो उसके लिये यह सब छाया ही छाया हो।

६

शिवतोष के घर में गुरुजी के साथ ही हम दोनों बंधु रहने लगे। हमीं उनके प्रधान शिष्य थे, हमें वे कभी अपनी आंखों की ओट नहीं करना चाहते थे।

गुरु और गुरुभाइयों में दिनरात रस और रसतत्त्व की आलोचना चला करती। उन्हीं सब दुरूह-दुर्गम बातों के घटाटोप को भेदकर कभी-कभी अचानक भीतर की ओर से किसी लड़की के गले की स्वच्छ हंसी यहां आ पहुंचती। किसी-किसो समय दासी को उद्देश्य करके ऊंची आवाज़ में किसीकी पुकार सुनाई पड़ जाती—"वामी!" भाव के जिस आकाश में हम लोगोंने अपने मन को विभोर कर रखा था, वहां के लिये ये सब बातें अत्यंत तुच्छ ही समझी जानी चाहिए थीं; किन्तु वे जब औचक ही हमें छू जातीं तो सहसा अनुभव होता कि जैसे अनावृष्टि के तप्त धू-धू के बीच झमा-झम पानी का एक झला बरस पड़ा हो! हम लोगोंकी दीवार से सटे हुए उस पार के अदृश्यलोक से, फूल की टूटी पंखुड़ियों की तरह जीवन का तनिक-तनिक-सा परिचय जब हमें अचानक छू जाता, तब मैं पल ही भर में अनुभव कर लेता कि रस का लोक तो वहीं है, जहां उस वामी के आंचल में घर-गिरिस्ती की चाबियों का गुच्छा खनक उठता है, जहां रसोईघर से भोजन को ख़ुशबू उठा करती है, जहां घर

बुहारने की आवाज़ सुनने मिलती है, जहां सब कुछ तुच्छ होते हुए भी एकदम सत्य है! सब मधुर-तीव्र स्थूल-सूक्ष्म मिलकर जहां एकाकार हो गए हैं, रस का स्वर्ग वहीं है!

शिवतोष की तरुणी विधवा स्त्री का नाम था दामिनी। नाम के अनुरूप ही कभी–कभी ओट में से पलभर के लिये उसकी झलक दिखाई दे जाती। हम दोनों मित्र गुरु के साथ इस तरह एकात्म थे कि कुछ ही दिनों बाद हमारे निकट दामिनी की ओट टिकी नहीं रह सकी।

दामिनी मानो सघन सावन-घनों की ही दामिनी हो! बाहर की ओर व्याप्त उसके राशि-राशि यौवन के अंतर में जैसे चंचल अग्नि की दीप्ति जगमगा रही हो!

शचीश की डायरी में एक जगह लिखा है: "ननीबाला में मैंने नारी का एक विश्वरूप देखा था—अपवित्रता के कलंक को जिस नारी ने खुद ही वरण किया, पापी के लिये अपना जीवन दे डाला; जिस नारी ने मरकर जीवन का सुधापात्र और भी लबालब भर दिया। किन्तु दामिनी में नारी का एक अन्य विश्वरूप देखा। उस नारी का मृत्यु से कोई नाता नहीं, वह केवल जीवन-रस ही की रसिक है। वसन्त के मोहक पुष्पवन के समान वह सौरभ और लुनाई की हिलोर से छलक-छलक उठती है। उसके लिये कुछ भी व्यर्थ नहीं। संन्यासी को घर में स्थान देते हुए वह तनिक भी राज़ी नहीं। वसंत के दक्षिण-पवन के मुक़ाबिले उत्तर की शीतकालीन ठंडी हवा को वह कौड़ी-भर भी लगान न देगी, मानो ऐसा ही संकल्प किए बैठी हो!

यहां दामिनी के संबंध में थोड़ा-सा शुरू का इतिहास कह देना

अनुचित न होगा। जिन दिनों रेशम के रोज़गार में दामिनी के पिता अन्नदाप्रसाद की तहवील मुनाफ़े की अचानक बाढ़ से डूबी जा रही थी, उन्हीं दिनों शिवतोष के साथ उसका ब्याह हुआ। इतने दिन शिवतोष का केवल कुल ही श्रेष्ठ था, अब भाग्य भी श्रेष्ठ हो आया। अन्नदा ने जमाई के लिये कलकत्ते में एक घर बनवा दिया और जिससे खाने-पहनने का कोई कष्ट न हो, ऐसी ही व्यवस्था कर दी। इसके सिवा गहना-पत्ता भी कुछ कम नहीं दिया।

शिवतोष को उन्होंने अपने आफ़िस में काम सिखलाने की काफ़ी कोशिश की लेकिन उसका झुकाव स्वभाव से ही संसार की तरफ़ नहीं था। कभी किसी ज्योतिषी ने हिसाब लगाकर उससे कह दिया था कि किसी एक विशेष योग में बृहस्पति की कोई एक विशेष दृष्टि पाकर वह जीवन्मुक्त हो उठेगा! उसी दिन से जीवन्मुक्त होने की प्रत्याशा में वह कामिनी-कांचन और अन्यान्य रमणीय पदार्थों का लोभ त्याग कर बैठा। इसी बीच लीलानन्द स्वामी से उसने मंत्र लिया।

इधर रोज़गार की उल्टी हवा का झपट्टा खाकर अन्नदा की फूले हुए मस्तूलवाली भाग्यतरी बिल्कुल औंधी हो गई। घर-द्वार बिक जाने तक की नौबत आ पहुंची; भर-पेट अन्न जुटाना भी कठिन हो गया।

एक दिन शिवतोष संध्या समय अंतःपुर में आकर स्त्री से बोला, स्वामीजी आए हैं, तुम्हें बुला रहे हैं, कुछ उपदेश देंगे।—दामिनी बोली, नहीं, इस वक्त मैं नहीं जा सकती, मुझे फ़ुर्सत नहीं।

फ़ुर्सत नहीं! यह कैसी बात है? शिवतोष ने निकट आकर

देखा, दामिनी अंधियारे-घर में बैठी संदूक़ खोलकर गहना-गुरिया सहेज रही है। पूछा, यह क्या कर रही हो?—दामिनी ने कहा, अपने गहने संभाल रही हूं।

तो क्या इसीलिये वक्त नहीं है? सच ही तो है!—दूसरे दिन दामिनी ने अपना लोहे का संदूक़ खोलकर देखा, गहने का बक्स ग़ायब है। पति से पूछा, मेरे गहने?—पति ने कहा, सो तो तुमने अपने गुरु को अर्पित कर दिए हैं। इसीके लिये तो उन्होंने ठीक उसी समय तुम्हें बुलवाया था। वे अन्तर्यामी जो ठहरे! उन्होंने तुम्हारा कांचन का लोभ हरण कर लिया!

दामिनी ने आगबबूला होकर कहा, मेरे गहने दे दो!

पति ने पूछा, क्यों, क्या करोगी?

दामिनी बोली, वह मेरे पिता का दान है, अपने पिता को दूंगी।

शिवतोष बोला, वह दान उससे कहीं अच्छी जगह जा पहुंचा है। संसारी जीवों का पेट न भरकर वह भक्तों की सेवा में निछावर हो गया है!

और फिर इसी तरह भक्ति की दस्युवृत्ति का सिलसिला शुरू हो गया। दामिनी के चित्त से ज़बर्दस्ती सब तरह की कामना-वासना का भूत भगाने के लिये पग-पग पर ओझा का उत्पात चलने लगा। जिस समय दामिनी के बाप और उसके छोटे-छोटे भाई उपवास करके भूखों मर रहे थे, उसी समय घर में प्रतिदिन साठ-सत्तर मूर्ति भक्तों की सेवा का अन्न उसे अपने ही हाथों तैयार करना पड़ता था। दामिनी जान-बूझकर तरकारी में नमक नहीं डालती, जान-बूझकर दूध जला देती। तब भी उसकी तपस्या इसी तरह चलती गई।

इसी समय उसका पति मरती-वेला पत्नी को अपनी भक्तिहीनता का अन्तिम दंड दे गया ; अर्थात् सारी संपत्ति-सहित स्त्री को विशेष रूप से गुरु के हाथों सौंप गया !

७

घर में लगातार भक्ति की लहर उमड़ रही है। कितनी दूर-दूर से कितने ही लोग आ-आकर गुरुजी की शरण ले रहे हैं। और इधर दामिनी अनायास ही गुरु के निकट पहुंच सकी है, फिर भी उस दुर्लभ सौभाग्य को वह दिनरात अपमानित करके जैसे दूर ही ठेले रखती है।

गुरुजी जिस दिन विशेष रूप से उपदेश देने के लिये उसे बुलवाते, वह कहती, मेरा सिर दुख रहा है।—जिस दिन अपने साँझ के आयोजन में कोई विशेष त्रुटि लक्ष्य करके वे दामिनी से सवाल करते, वह कहती, मैं थियेटर देखने गई थी!—यह उत्तर सच्चा नहीं होता, किंतु कटु अवश्य होता था, यही दामिनी का प्रधान संतोष था। भक्त नारियों का झुण्ड आकर दामिनी का यह काण्ड देखकर अचरज से गाल पर हाथ धरकर बैठ जाता। एक तो वैसे ही उसकी वेशभूषा विधवाओं-जैसी नहीं होती ; फिर गुरु के उपदेश-वाक्य को वह यथासंभव न मानकर ही चलती है। तिसपर इतने बड़े महापुरुष के इतने निकट-संपर्क में आने पर देह और मन जो अपने-आप ही संयम-शुचिता द्वारा उज्ज्वल हो उठते हैं, सो उसका तो कोई चिह्न भी

दामिनी में नहीं! सभी कहतीं, धन्य है! बहुत-बहुत देखी हैं, लेकिन ऐसी स्त्री तो सात जनम नहीं देखी!

सुनकर स्वामीजी हंस देते। कहते, जिसमें ताक़त है, भगवान् को उसीके साथ लड़ाई करना भाता है। जिस दिन वह हार मानेगी, उस दिन उसके मुंह से आधी बात भी नहीं निकलेगी।

वे उसे और भी अधिक क्षमा करते हुए चलने लगे; और इस प्रकार की क्षमा दामिनी को और भी अधिक असह्य होने लगी। वह तो शासन का ही दूसरा नाम है। गुरुजी दामिनी के साथ अपने बर्ताव में कुछ अधिक मधुर भाव प्रकाशित करते थे। एक दिन अचानक सुनने में आया कि दामिनी अपनी किसी सहेली के साथ उसीकी नक़ल करके हंस रही है!

तब भी वे बोले, जो असंभव है वह भी संभव होकर ही रहेगा और इसीको साबित करने के लिये ही दामिनी विधाता का उपलक्ष्य बनकर आई है, उस बेचारी का अपना तो कोई दोष ही नहीं!

हम लोगोंने शुरू-शुरू में दामिनी की यही अवस्था देखी। इसके बाद अघटन घटना शुरू हुआ।...

अधिक लिखने की इच्छा नहीं होती, लिखना भी कठिन है। जीवन में पद की ओट अदृश्य हाथों द्वारा जो जाल बुना जाता है, उसका नक़्शा किसी शास्त्र की आज्ञा के मुताबिक़ नहीं होता, फ़रमाइशी तो बिल्कुल ही नहीं! इसीलिये तो भीतर-बाहर सब कुछ इतना अशोभन हो उठता है और जी में इतनी चोटें सहनी पड़ती हैं—इतनी रुलाई फट पड़ती है!

दामिनी के विद्रोह का कर्कश आवरण जाने-किस भोर के उजाले

में चुपचाप बिल्कुल तार-तार होकर फट गया, आत्मनिवेदन के पुष्प ने अकाश की तरफ़ अपना ओस-भीना मुख उठाया। दामिनी की सेवा अब सहज ही ऐसी सुन्दर और मधुर हो उठी, मानो भक्तों की साधना पर भक्तवत्सल का कोई विशेष वरदान आ पहुंचा हो!

इसी प्रकार दामिनी जिस समय अचंचल सौदामिनी हो उठी, शचीश उसकी शोभा निरखने लगा। किन्तु मैं कहूं कि शचीश ने केवल शोभा ही देखी, दामिनी को नहीं देखा!

शचीश के सोने के कमरे में चीनीमिट्टी के पाट पर लीलानन्द स्वामी की ध्यानमूर्ति का एक फ़ोटोग्राफ़ था। एक दिन शचीश ने देखा कि वह टूटकर चूर-चूर होकर धरती पर पड़ा हुआ है। समझा, उसकी पोसी हुई बिल्ली ने ही यह काण्ड किया है। किंतु बीच-बीच में और भी ऐसे उत्पात दिखाई देने लगे जो पालतू बिल्ली तो क्या, जंगली बिल्ली के लिये भी असाध्य थे।

चारों तरफ़ आकाश में एक चंचल हवा बहने लगी! एक अदृश्य विद्युत् भीतर ही भीतर खेलने लगी! दूसरों की बात तो मैं नहीं जानता, किन्तु अज्ञात व्यथा से मेरा मन टीसा करता था। कभी-कभी सोचता, रस की रातदिन की यह तरंग कदाचित मुझे अनुकूल नहीं पड़ती। बन सके तो एक दफ़ा सिर पर पांव धरकर यहां से बेतहाशा दौड़ लगा दूं। चमारों के बच्चों के साथ सब प्रकार से रसशून्य वर्णमाला के युक्ताक्षरों का जो प्रसंग चला करता था, वही मेरे लिये बहुत उपयुक्त था।

एक दिन शीतकाल की दुपहरिया में जब गुरुजी विश्राम कर रहे थे और भक्त लोग थके हुए लेटे थे, शचीश किसी कारण असमय में

अपने सोने के कमरे में गया। किन्तु हठात् चौखट के पास चौंककर खड़ा हो गया। देखा, दामिनी अपनी सुदीर्घ केशराशि बिखराए धरती पर लोटती हुई सिर ठोक रही है और कह रही है, पत्थर, अजी ओ पत्थर, ओ पत्थर! दया करो, दया करो, मुझे मार डालो!...

भय से शचीश की सारी देह कांप उठी, वह वहां से उलटे-पावं भाग खड़ा हुआ!

८

गुरुजी साल में एक बार किसी दुर्गम स्थान में निर्जन भ्रमण के लिये जाया करते थे। माघ महीने में उनका वही समय आ पहुंचा। शचीश बोला, मैं आपके साथ जाऊंगा।

मैंने कहा, मैं भी जाऊंगा।—रस की उत्तेजना में मैं हड्डी के भीतर तक जीर्ण हो गया था। कुछ दिन भ्रमण के क्लेश और निर्जन-वास की मुझे सख्त ज़रूरत थी।

स्वामीजी ने दामिनी को बुलाकर कहा, मां, मैं भ्रमण के लिये निकलूंगा। जिस प्रकार इस अवसर पर पहले तुम अपनी मौसी के यहां जाकर रहा करती थीं, इस बार भी तुम्हारे लिये वैसा ही बन्दोबस्त किए जाता हूं।

दामिनी बोली, मैं साथ जाऊंगी।

स्वामीजी ने कहा, भला चल कैसे सकोगी, रास्ता तो बहुत मुश्किल है?

दामिनी बोली, मज़े में चल सकूंगी। मेरे लिये कोई फ़िक्र नहीं करनी होगी।

स्वामीजी दामिनी की यह निष्ठा देखकर प्रसन्न हुए। पिछले बरसों में यही समय दामिनी की छुट्टी का समय होता था, उसका मन साल भर इन्हीं दिनों की बाट जोहा करता था। स्वामीजी ने सोचा, यह कैसा अलौकिक काण्ड है! भागवत् रस के रसायन से पत्थर भी किस तरह माखन हो जाया करता है?

दामिनी किसी भी तरह नहीं मानी, साथ गई ही।

६

उस दिन प्रायः छः घंटे धूप में पैदल चलकर हम लोग जिस स्थान पर आ पहुंचे, वह समुद्र के भीतर एक अंतरीप था। बिल्कुल निर्जन निस्तब्ध। नारिकेलवन के पल्लववीजन में शांतप्राय समुद्र का अलस कल्लोल घुला-मिला जा रहा था। अंतरीप को देखकर ठीक ऐसा लगा जैसे घोर नींद में पृथिवी का एक थका हुआ हाथ समुद्र की छाती पर अलस भाव से जा पड़ा है। उसी हाथ की हथेली पर एक सब्ज़ रंग की नीलाभ, छोटी पहाड़ी है। इस पहाड़ी में बहुत दिनों की खोदी हुई एक पुरानी गुफा है। वह बौद्ध गुफा है या हिंदू, उसके शरीर पर जो मूर्तियां हैं वे बुद्ध की हैं अथवा वासुदेव की, उसकी शिल्पकला पर यूनान का प्रभाव है या नहीं, इसे लेकर पंडित-मंडली में कभी काफ़ी गहरी हलचल मच चुकी है।

बात यह ठहरी थी कि गुफा देखकर हम लोग लोकालय की ओर लौट आएंगे। किन्तु उसकी संभावना नहीं दीखती। दिन चुकने आया ; कृष्ण-पक्ष की द्वादशी थी। गुरुजी बोले, आज की रात इसी गुहा में काटनी होगी।

हम तीनों ही सागर-तीर वन की श्यामल छाया-तले बालू पर बैठ गए। समुद्र के पश्चिम प्रान्त में आसन्न अंधकार के सम्मुख दिवस के अंतिम-प्रणाम की तरह सूर्यास्त नत हो आया। गुरुजी ने गान साधा—आधुनिक कवि का गान उन्हें अस्वीकृत नहीं।

पथ पर चलते भेंट तुम्हारे—
साथ हुई मेरी दिन-शेषे,
तुम्हें देखने जाकर दिन की—
किरन खो गई एक-निमेषे।

गान उस दिन बहुत जमा। दामिनी के उमड़ते आंसू रोके नहीं रुके। स्वामीजी ने अंतरा संभाला—

पाऊं दर्शन, या मत पाऊं,
शोक न उसके लिये मनाऊं;
रुको एक छिन, चरण तुम्हारे—
ढाकूं लुंठित-कुंचित-केशे॥

स्वामीजी जब रुक गए, तब आकाश और समुद्र में छाई हुई संध्या की स्तब्धता, नीरव सुर के रस से, पके हुए सुनहले फल की तरह छलक आई। दामिनी ने जाने-किसके उद्देश्य से माथा टेककर प्रणाम किया—बहुत देर तक सिर नहीं उठाया—केश-राशि बिखरकर धरती पर लोटने लगी।

१०

शचीश की डायरी में लिखा है :

"गुहा के भीतर बहुत-से कमरे थे। उन्हींमें से एक में मैं कंबल बिछाकर लेट रहा।

गुहा का अन्धकार मानो किसी काले जन्तु की तरह था; उसकी भीगी सांस मेरे बदन को छू रही थी। मुझे ऐसा लगा जैसे वह किसी आदिमकाल की प्रथम सृष्टि का प्रथम जन्तु हो। उसके आंख नहीं, कान नहीं, केवल एक भयंकर भूख है! वह अनन्त काल से इसी गुहा में बंदी है। उसके मन नहीं—वह कुछ भी नहीं जानता; यदि है तो केवल व्यथा है—वह निःशब्द रोया करता है।

थकान ने किसी भारी बोझ की तरह मेरे सारे शरीर को दबा रक्खा था, किंतु नींद किसी भी सूरत से नहीं आई। जाने कौन-सा एक पंछी—शायद चिमगादड़ हो—भीतर से बाहर की ओर अथवा बाहर से भीतर की ओर डैने फटफटाता हुआ एक अंधियारे कोने से से दूसरे अंधियारे कोने की तरफ़ चला गया।—देह पर उसकी हवा लगते ही कांटे खड़े हो गए!

सोचा, बाहर जाकर सोऊं। लेकिन गुहा का दरवाज़ा किस तरफ़ है सो समझ में ही नहीं आया। खूब सिकुड़कर एक ओर चलने की कोशिश करते ही सिर टकरा गया; दूसरी तरफ़ फिर टकराया; फिर एक और किसी छोटे गढ़े में जा फंसा, जहां गुहा की दरारों से झिरा हुआ पानी इकट्ठा हो गया था।

अंत में लौटकर मैं फिर कंबल पर लेट गया। ऐसा जान पड़ा मानो उस आदिम जन्तु ने मुझे अपने लार-भीगे कवल के भीतर भलीभांति जकड़ रखा है, किसी भी तरफ़ से बाहर होने की राह नहीं। वह केवल एक काली क्षुधा है जो मुझे तिल–तिल करके चाटती रहेगी और धीरे–धीरे निःशेष कर डालेगी। इसका रस ऐसा जारक रस है जो चुपचाप जीर्ण कर देता है !

नींद आ जाए तो जान बचे ! मेरा जागरित चैतन्य इतने बड़े सत्यानासी अंधकार के निविड़ आलिंगन को नहीं सह सकता— मृत्यु ही उसे सह सकती है

मालूम नहीं कितनी देर बाद—ठीक नींद नहीं—बेहोशी की एक झीनी-सी चादर ने मेरी चेतना को ढक दिया। उसी तंद्रावेश की निविड़ता में ही पावों के पास पहली बार अचानक गहरी सांस के स्पर्श का अनुभव हुआ। भय के मारे मेरा सारा शरीर बर्फ़ हो गया ··फिर वही आदिम जन्तु !

इसके बाद जाने-किसने कसकर मेरे पावं पकड़ लिए। मैंने पहले सोचा, कोई जंगली जानवर है। किंतु उनकी देह में तो लोम होते हैं—इसके रोएं कहां ! मेरा सारा शरीर एक प्रकार की गहरी अस्वस्ति से कुंचित हो उठा। जान पड़ा, मानो सांप-जैसा कोई ठंडा-ठंडा लिरबिटा जन्तु है जिसे मैं नहीं पहचानता। उसका सिर कैसा है, धड़ कैसा है, पूंछ कैसी है—कुछ भी नहीं मालूम ! उसकी लील जाने की प्रणाली कैसी होगी—कुछ भी नहीं सोच पाता। वह इस तरह चिकना-चिकना होने से ही ऐसा वीभत्स और घिनौना है—उद्दाम क्षुधा का पुंज !

भय से—घिन से—मेरा गला रुंध गया। मैं उसे दोनों पावों से ठेलने लगा। ऐसा जान पड़ा मानो उसने मेरे पांवों पर ही अपना मुंह सटाकर रखा है—बार-बार सांस का स्पर्श मिल रहा है। वह कैसा मुख होगा, नहीं जानता। मैं बेचैन होकर छुटकारा पाने के लिये पैर फटकारने लगा।···

अंत में तंद्रा टूट गई। पहले ख्याल हुआ था, उसको देह पर रोएं नहीं हैं, किन्तु सहसा अनुभव हुआ जैसे पावों पर राशि-राशि केशर झर पड़ी हो। मैं छटपटाकर उठ बैठा।

उसी समय जाने-कौन उस अंधकार के घटाटोप में चुपचाप चला गया! तभी मालूम नहीं कैसी एक नीरव आवाज़-सी सुनाई पड़ी। वह क्या दबी हुई रुलाई का स्वर था?"

दामिनी

१

हम लोग अपने भ्रमण से वापस आ गए। गांव के देवालय के निकट किसी शिष्य के मकान की दूसरी मंज़िल पर हमारा निवास-स्थान ठीक हुआ।

गुहा से लौटने के बाद दामिनी अक्सर दिखाई नहीं पड़ती। वह हमारे लिये रसोई ज़रूर कर देती है किन्तु यथासंभव दृष्टि के सामने नहीं पड़ती। उसने मुहल्ले की स्त्रियों के साथ मेल-जोल बढ़ा लिया है, सारा दिन उन्हीं लोगों के यहां उठते-बैठते कट जाता है।

गुरुजी कुछ खीझ-से उठे। सोचने लगे कि धरती की तरफ़ ही दामिनी का खिंचाव है, आकाश की ओर नहीं।—कुछ दिन वह देवपूजा की भांति हम लोगों की सेवा-टहल में संलग्न हो गई थी; इस समय उसमें थकावट के लक्षण साफ़ दिखाई पड़ रहे हैं। भूलें होती हैं, कामकाज में उसका वह सहज लावण्य अब नहीं देखाई देता।

गुरुजी अब फिर उससे मन ही मन डरने लगे हैं। दामिनी की भवों में कुछ दिनों से एक विद्रोही-रेखा काली होकर घुमड़ती आ रही है और उसके मिज़ाज की हवा जाने-कैसी अस्तव्यस्त होकर बहनी शुरू हो गई है। उसका शिथिल ढीला जूड़ा उद्धत भाव से कंधे की तरफ़ झूलता रहता है। ओठों में, आखों के कोनों में, हाथ के संचालन में—रह-रहकर किसी कठोर उल्लंघन का इशारा मिल जाता है।

गुरुजी ने फिर भजन-कीर्त्तन में और भी अधिक मन लगा दिया। सोचा, उड़ा हुआ भ्रमर मीठी ख़ुशबू से ख़ुद ही लौटकर गुपचुप मधुकोष पर आ बैठेगा। हेमन्त के छोटे-छोटे से दिन भजन-कीर्त्तन की मदिरा से फेनायित होकर जैसे छलकने लगे।

लेकिन कहां! दामिनी तो पकड़ में नहीं आई। गुरुजी उसे लक्ष्य करके एक दिन हंसते हुए बोले, भगवान् आखेट के लिये निकले हैं; हरिणी लुक-छिपकर शिकार का आनंद और भी जमाए दे रही है। किन्तु बाण छाती में सहना तो पड़ेगा ही!

शुरू में जब दामिनी के साथ हम लोगों का परिचय हुआ, उस समय भक्तमंडली में उसका प्रत्यक्ष आना-जाना नहीं था, लेकिन तब इस बात की तरफ़ कभी हमारा ध्यान ही नहीं गया। लेकिन आज यही बात हमारी दृष्टि में सबसे अधिक प्रत्यक्ष हो उठी कि दामिनी हम लोगों में प्रत्यक्ष नहीं होती। उसका न दिखना ही हमें तूफ़ानी हवा की तरह सब तरफ़ से झकझोरने लगा। गुरुजी ने उसकी ग़ैरहाज़िरी को 'अहंकार' कहकर स्वीकार कर लिया, यही बात उसके अहंकार को और भी अधिक चोट पहुंचाने लगी। और मैं?—मेरी बात भला क्या बताई जाए!

गुरुजी ने एक दिन हिम्मत करके यथासंभव बड़े मीठे सुर में कहा, दामिनी, आज थोड़ी देर के लिये तीसरे पहर तुम्हें कुछ फ़ुर्सत होगी? अगर हो तो—

दामिनी बोली, नहीं!

क्यों भला?

मुहल्ले में हल्दी कूटने जाऊंगी।

हल्दी कूटने ! क्यों भला ?

नन्दो-वगैरों के यहां ब्याह है ।

तो जाना क्या बिल्कुल ही ज़रूरी—

हां, मैंने उनसे वादा कर छोड़ा है ।

और कुछ न कहकर दामिनो तेज़ हवा के झोंके की तरह सहसा चली गई । शचीश वहीं बैठा था, हैरान हो गया । कितने ही धनी-मानी-गुणी विद्वान् उसके गुरु के पास भक्ति से सिर नवाते हैं, और यह ज़रा-सी छोकरी—भला किस बिना पर उसका ऐसा अकुंठित तेज है ?

और भी एक दिन सांझ के समय दामिनी घर ही पर थी । उस दिन गुरुजी ने विशेष करके दार्शनिक तत्त्व की कोई बड़ी-सी बात उठाई । थोड़ी दूर अग्रसर होते ही उन्होंने हमारे मुंह की ओर ताका तो उसपर कुछ ख़ाली-ख़ाली-जैसा भाव पाया । समझ गए कि हम लोग अन्यमनस्क हैं । पीछे की ओर मुड़कर देखा तो मालूम हुआ कि दामिनी जहां बैठकर कपड़े में बटन टांक रही थी, वहां अब नहीं है । बात साफ़ हो गई कि हम दोनों दामिनी के उठकर चले जाने की ही बात सोच रहे हैं । उनके मन में भीतर-ही-भीतर बच्चों के खुनखुने की तरह—ज़रा-सा हिलाते-डुलाते—केवल यही एक बात बार-बार बजने लगी कि दामिनी ने सुना नहीं—सुनना चाहा नहीं ।—जो बात वे कह रहे थे उसका सूत्र ही खो बैठे । कुछ देर बाद उनसे नहीं रहा गया ; दामिनी के कमरे के पास जाकर बोले, दामिनी, यहां अकेली बैठी क्या कर रही हो ? उस कमरे में नहीं आओगी ?

दामिनी ने कहा, नहीं, मुझे काम है ।

गुरुजी ने झांककर देखा, पिंजरे में एक चील बंद है। दो दिन हुए जाने-कैसे टेलिग्राफ़ के तार से टकराकर वह चील धरती पर आ गिरी थी। कौओं के दल से उसका उद्धार करके दामिनी उसे घर ले आई थी, तब से बराबर तीमारदारी चल रही है।

यह तो हुआ चील का क़िस्सा। उसके बाद दामिनी ने कहीं से कुत्ते का एक पिल्ला जुटा लिया। जैसा उसका रूप था वैसा ही कौलीन्य भी। एक मूर्तिमान रसभंग समझिए! करताल की ज़रा-सी चटक सुन पाते ही वह आकाश की ओर मुंह करके आर्त्तस्वर में विधाता के पास शिकायत जनाने लगता है। वह शिकायत विधाता नहीं सुन पाते, यही ख़ैरियत है, किन्तु जो लोग सुनते हैं, उनसे तो धीरज नहीं रखा जाता।

किसी दिन छत के कोने पर दामिनी टूटी हांड़ी में फूलपत्तों को लिए बाग़बानी में मशग़ूल थी कि तभी शचीश ने आकर उससे पूछा, आजकल तुमने वहां जाना एकबारगी छोड़ क्यों दिया है?

कहां?

गुरुजी के पास।

क्यों, मुझसे क्या तुम लोगों का कोई मतलब अटका है?

मतलब हम लोगों का कुछ भी नहीं, किन्तु तुम्हारा तो है।

दामिनी प्रदीप्त हो उठी, बोली, कुछ नहीं, कुछ नहीं!

शचीश स्तंभित होकर उसके मुंह की तरफ़ ताकता रह गया। थोड़ी देर बाद बोला, देखो, तुम्हारा मन अशांत हो गया है, यदि शांति चाहती हो तो—

भला तुम लोग मुझे शांति दोगे? रात-दिन मन में केवल लहर

उठा-उठाकर अपने को पागल किए हुए हो, तुम्हें शांति कहां! हाथ जोड़ती हूं, मुझपर दया करो!—मैं शांत ही थी। शान्ति से ही रहना चाहती हूं।

शचीश बोला, ऊपर जो लहरें देखती हो सो सही है, लेकिन धीरज धरकर भीतर तक पहुंचते ही जान लोगी कि वहां सब शांत है।

दामिनी हाथ जोड़कर बोली, अजी दुहाई है तुम्हारी, मुझसे और भीतर तक पहुंचने के लिये न कहना। तुम सब अगर मेरे कल्याण की आस छोड़ दो तो शायद मैं बच भी जाऊं!

२

नारी-हृदय का रहस्य जान सकने योग्य जानकारी मुझे नहीं है। बिल्कुल ऊपर-ऊपर और बाहर-बाहर से ही जो कुछ थोड़ा-बहुत देखने का सौभाग्य पाया है, उससे मेरा यही विश्वास हुआ है कि वे लोग जहां दुःख पाती हैं वहीं हृदय दान करने के लिये प्रस्तुत होती हैं। ऐसे पशु के लिये भी वे अपनी वरणमाला गूंथ सकती हैं जो उस माला को कामना के पंक में कुचलकर वीभत्स कर सकता है। और यदि वैसा न कर सकीं तो फिर वे किसी ऐसे कंठ की ओर उन्मुख होती हैं जहां उनकी माला पहुंच ही नहीं सकती,—ऐसे व्यक्ति की ओर लक्ष्य करती हैं जो भाव की सूक्ष्मता में घुल-मिलकर मानो मिट ही गया है। स्वयंवरा होने के समय नारी उन्हींका त्याग करती है जो मेरी तरह मझोले दल के आदमी हैं, जो स्थूल-सूक्ष्म दोनोंसे मिलकर गठित हैं, जो नारी को नारी ही के रूप में जानते

हैं—अर्थात् इतना जानते हैं कि वह मिट्टी सानकर उसीसे गढ़ी हुई खेल की गुड़िया भी नहीं है और सुरों से बुनी हुई वीणा की झंकार-मात्र भी नहीं। वे हमें त्याग देती हैं, कारण, हममें न तो लुब्ध लालसा का दुर्दान्त मोह है, न विभोर भावुकता की झीनी और रंगीन माया। हम लोग प्रवृत्ति के कठिन आवेग में उन्हें तोड़कर फेंक भी नहीं पाते, और भाव के ताप से गलाकर अपनी कल्पना के सांचे में ढालना भी नहीं जानते। वे जो कुछ हैं, हम उसी रूप में उन्हें जानते हैं, इसीलिये वे हमें पसंद तो करती हैं, तब भी प्यार नहीं कर पातीं। दरअसल हम लोग ही उनके यथार्थ अवलंब हैं, हमारी निष्ठा पर वे हमेशा निर्भर कर सकती हैं। हमारा आत्मोत्सर्ग इतना सहज होता है कि यह वे भूल ही जाती हैं कि उसका कोई मूल्य भी हो सकता है। उनके हाथों हम सिर्फ इतनी ही बख्शिश पाते हैं कि ज़रूरत पड़ते ही वे हमें अपने उपयोग में लाती हैं;—और शायद श्रद्धा भी करती हैं हम पर। लेकिन जाने भी दीजिए, ये सब क्षोभ की ही बातें हैं। बहुत करके ये सब सच भी नहीं हैं और यह भी खूब संभव है कि हम जहां कुछ भी प्रतिदान नहीं पाते, वहीं हमारी सबसे बड़ी जीत है!—कम-से-कम ऐसा सोचकर हम अपनेको सांत्वना तो दे ही लेते हैं।

दामिनी गुरुजी की छाया भी बचाकर चलती है, क्योंकि उनके प्रति उसके मन में एक गहरी नाराज़ी संचित है। वह शचीश से भी यथासंभव कनाई काटकर ही चलती है, क्योंकि उसके प्रति उसके मन का भाव ठीक इससे विपरीत जाति का है। नज़दीक सिर्फ मैं ही एक आदमी रहा जिसे लेकर राज़ी-नाराज़ी का कोई झमेला ही नहीं। इसीलिये दामिनी मेरे पास अपनी तमाम पुरानी बातें, नई बातें, मुहल्ले

में कहां क्या देखा और क्या हुआ—ऐसे अत्यंत मामूली विषय भी अनर्गल कह जाया करती है। मेरे दूसरी मंज़िलवाले कमरे के सामने जो तनिक-सी ढकी हुई छत है, वहीं बैठकर सरौते से सुपारी काटते-काटते वह जो-चाहे कहे जाती है। लेकिन दुनिया की यह अत्यंत मामूली घटना भी आजकल शचीश की भाव-विह्वल आंखों में इस तरह जा अटकेगी—यह मैं सोच ही नहीं सकता था। हो सकता है कि घटना नितांत साधारण न भी हो, लेकिन मेरा ख्याल था कि शचीश इस समय जिस भाव-लोक का अधिवासी है, वहां 'घटना' नाम की कोई वस्तु नहीं होती। वहां आह्लादिनी संधिनी और योगमाया जो कुछ घटा रही हैं, वह तो एक नित्य लीला है, अतएव वह ऐतिहासिक नहीं। वहां चिर-यमुनातीरे—चिर-धीर-समीरे—जिसने मुरलिया की तान सुनी है, वह उसके बाद भी अपने चारों ओर के अनित्य व्यापार को आंखों देखेगा या कानों सुनेगा, ऐसा मुझे गुमान भी न था। कम-से-कम भ्रमण से लौटने के पहले तो शचीश के आंख-कान इसकी अपेक्षा कहीं अधिक रूद्ध थे।

मेरी ओर से भी थोड़ी-सी चूक हो गई थी। मैंने भी रसा-लोचना की महफ़िल से बीच-बीच में ग़ैरहाज़िर रहना शुरू कर दिया था। मेरी अनुपस्थिति के ये अवसर क्रमशः शचीश की नज़र में पड़ने लगे। एकदिन उसने आकर देखा, ग्वाले के यहां से दूध ख़रीदकर दामिनी के पोसे हुए नेवले को पिलाने की ग़रज़ से मैं उसके पीछे-पीछे भागा जा रहा हूं। भजन-संकीर्तन में सम्मिलित न होने के लिये यह कैफ़ियत क़तई संतोषजनक नहीं कही जा सकती; सभा के भंग होने तक इस काम को मुलतवी कर छोड़ने

में कोई हानि नहीं थी,—यहां तक कि नेवले की क्षुधा-निवृत्ति का भार ख़ुद नेवले को ही सौंप देने से जीव-दया के वैष्णव-नियम में भी कुछ बहुत बड़ा व्याघात नहीं पड़ता ; उल्टे मैं अनायास ही हरिनाम में अपनी अभिरुचि और निष्ठा का परिचय दे पाता। अतएव शचीश को देखकर अप्रतिभ और अप्रस्तुत होना ही पड़ा। दूध का पात्र वहीं रखकर आत्मसम्मान का उद्धार-साधन करने के ख़याल से वहां से खिसक जाने की कोशिश की।

लेकिन दामिनी के व्यवहार ने तो चकित कर दिया। तनिक भी कुंठित हुए बिना वह बोली, चले कहां श्रीविलास बाबू ?

मैंने सिर खुजलाते हुए कहा, एक बार तनिक...

दामिनी बोली, उन लोगों का भजन-कीर्त्तन अब तक समाप्त हो गया होगा ; बैठिए भी।—मेरे कान गरम हो आए।

दामिनी ने कहा, इस नेवले के मारे बड़ी हैरान हूं। गई रात मुहल्ले के मुसलमानों के घर से एक मुर्गी चुराकर वह हज़म कर गया है। उसे अब छुट्टा नहीं रखा जा सकता। श्रीविलासबाबू से एकाध बड़ी-सी टोकरी खोजकर ख़रीद लाने के लिये कहा है ; नेवले को उसीके नीचे क़ैद करके रखना होगा।

नेवले को दूध-पिलाने, उसके लिये तलाश करके एक ख़ास तरह की टोकरी ख़रीद लाने आदि बातों के बहाने दामिनी ने श्रीविलास-बाबू के आनुगत्य का समुचित प्रचार शचीश के निकट काफ़ी उत्साह के साथ ही किया। जिस दिन गुरुजी ने मेरे ही सामने विशेष रूप से शचीश को हुक्का भरने का आदेश दिया था, उस दिन की घटना अचानक याद आ गई। आख़िर बात तो एक ही है।

शचीश कुछ न कहकर तनिक तेज़ी से ही वहां से चला गया। मैंने दामिनी की ओर नज़र फिराई तो देखा कि शचीश जिस ओर गया, उस ओर ताकते ही उसकी आंखों से बिजली की एक झलक कौंधकर सब ओर छिटक गई—वह मन-ही-मन एक कठोर हंसी हंस पड़ी।

उसने क्या समझा-बूझा सो तो वही जाने, लेकिन उसका परिणाम यह हुआ कि अब बिल्कुल मामूली-सी बात के बहाने भी वह मुझे प्रायः ही तलब करने लगी। इतना ही नहीं, किसी-किसी दिन अपने ही हाथों कोई मिठाई वग़ैरह तैयार करने पर वह ख़ास तौर से मुझे ही बिठाकर खिलाने लगी। ऐसे अवसर पर मैंने इधर-उधर करके कहा, तनिक शचीश भैया को—

दामिनी बोली, उन्हें खाने के लिये बुलाना झूठमूठ में परेशान करना ही होगा।

—और शचीश बीच-बीच में आकर देख भी गया कि मैं खाने बैठा हूं।

तीनों के बीच मेरी ही हालत सबसे शोचनीय है। जो दोनों इस नाटक के प्रधान पात्र हैं, उनका अभिनय आद्यन्त आत्मगत ही है। बीच में मैं ही केवल प्रकाश्य में हूं सो इसका कारण इतना ही है कि मैं नितान्त गौण हूं। फलस्वरूप बीच-बीच में अपने ऊपर खीझ भी होती; और दूसरी ओर, उपलक्ष्य का पार्ट अदा करने पर, भाग्य में जो कुछ थोड़ी-बहुत नक़द विदाई जुड़ती है, उसका लोभ भी संवरण नहीं कर पाता।—कुछ ऐसी ही मुश्किल में फंस गया हूं!

३

कुछ दिन तक शचीश और भी अधिक जोश के साथ करताल चटकाकर नाचते-नाचते कीर्तन करता फिरा। इसके बाद एक दिन मेरे पास आकर बोला, हम लोगों के बीच दामिनी का रहना नहीं हो सकता!

मैंने कहा, क्यों भला?

वह बोला, प्रकृति का संसर्ग हमें एकबारगी छोड़ देना होगा!

मैंने कहा, यदि ऐसा हो है, तब तो समझना चाहिए कि हमारी साधना में कहीं कोई भारी भूल है।

शचीश मेरे मुख पर अपनी दृष्टि जमाकर जिज्ञासु भाव से देखने लगा।

मैंने कहा, जिसे तुम प्रकृति कहते हो वह तो एक प्रकृत पदार्थ है। तुम उसे कदाचित् दूर हटा भी सकते हो लेकिन संसार से तो उसे मिटाया नहीं जा सकता। अतएव तुम यदि इस तरह साधना करते रहो, गोया वह वस्तु संसार में है हो नहीं, तब यह तो अपनेको भुलावा देना ही होगा। किसी दिन यह प्रवंचना इस तरह पकड़ में आएगी कि फिर भागते राह न मिलेगी।

शचीश ने कहा, न्याय-शास्त्र का तर्क अपने पास रक्खो, मैं तो काम की बात कह रहा हूं। स्पष्ट ही दीख रहा है कि स्त्रियां प्रकृति की दूती हैं, प्रकृति का हुक्म तामील करने के लिये वे तरह-तरह के साज-सिंगार से मन को भुलाने की चेष्टा किया करती हैं। हमारे जागरित चैतन्य पर अगर वे पर्दा न डाल पाएं तो हमपर मालिकाना

हुकूमत ही कैसे कर सकेगी भला ? इसीसे चैतन्य को मुक्त रखने के लिये प्रकृति की इन नाना दूतियों से, जैसे बने, बचकर चलना चाहिए।

मैं मालूम नहीं क्या-कुछ कहने जा रहा था कि शचीश मुझे रोककर बोला, भाई विश्री, तुम प्रकृति की माया को देख नहीं पा रहे, कारण, उसी माया के पाश में अपने को फंसाए हुए जो हो। जिस सुन्दर रूप के द्वारा वह आज तुम्हें बहलाए हुए है, मतलब चुक जाने पर रूप के उसी कृत्रिम चेहरे को वह हटा देगी। जिस तृष्णा के चश्मे से तुम्हें वह रूप आज संसार का सबसे बड़ा सत्य जान पड़ रहा है, समय चुकते ही प्रकृति की वह माया उस तृष्णातक को संपूर्ण विलुप्त कर देगी। जहां मिथ्या का जाल इस तरह सुस्पष्ट भाव से फैलाया गया हो, वहां ज़रूरत क्या है बहादुरी दिखलाने के लिये जाने की? तुम लोग गुरु को नहीं मानते इसीसे तुम्हें मालूम नहीं कि गुरु ही हमारी नैया के कर्णधार हैं। साधना को अपनी मर्ज़ी-मुताबिक़ गढ़ना चाहते हो?—अन्त में मझधार में डूब मरोगे!

—यह कहता हुआ शचीश गुरुजी के कमरे में चला गया और वहां उनके चरणों के पास बैठकर पांव दाबने लगा। उसी दिन उसने गुरु के लिये हुक्का भरकर उनके हाथों देते हुए प्रकृति के नाम शिकायत रुजू कर दी।

एक दिन के हुक्के के क़श में ही तमाम बातें ख़त्म नहीं हुईं। कई दिनों तक गुरुजी ने कई प्रकार से विचार किया। दामिनी को लेकर वे काफ़ी भुगत चुके हैं; और अब देखते हैं कि इस एकमात्र

छोकरी ने उनके भक्तों के अविराम, एकरस भक्ति-स्रोत में एक ख़ासो भवर की सृष्टि कर डाली है। लेकिन शिवतोष अपने घर-द्वार-संपत्ति-समेत दामिनी को कुछ इस तरह उन्हींके हाथों सौंप गया है कि उसे कहां हटाएं, यह सोचना भो कठिन है। और उससे भो कठिन यह है कि गुरुजी दामिनी से डरते हैं!

इधर शचीश उत्साह की मात्रा को दूनी-चौगुनी बढ़ाकर, बारबार गुरु के पांव दाबकर और हुक्का सँजोकर भो इस बात को किसो भो तरह नहीं भुला पाया कि प्रकृति उसकी साधना के पथ पर ख़ूब मज़े से पाया जमाकर डटकर, बैठ गई है।

एक दिन मुहल्ले के गोविन्दजू के मंदिर में किसो मशहूर कीर्त्तन-कार की टोलो का भजन-कीर्त्तन चल रहा था। संवाद ख़त्म होते-होते काफ़ी रात बीत चुकेगी। मैं शुरू में ही सहसा उठकर चला आया था। मैं वहां नहीं हूं, इस बात पर उस भीड़-भम्भड़ में भो किसी की नज़र पड़ेगी, इसकी मैंने कल्पना तक नहीं की थी।

उस दिन की उस सांझ की वेला दामिनी के मन का आवरण अचानक खुल गया। जो बातें बड़ो साध होने पर भी नहीं कही जातीं—जी में अटक और उलझ जाती हैं—वे भी उस दिन बड़े सहज और सुन्दर रूप में दामिनी के मुंह से निकल रही थीं। कहते-कहते वह मानो अपने ही गोपन मन की जाने-कितनी जानी-अनजानी कोठरियों में झांक सकी। उस दिन दैवात् जैसे अपने ही साथ परस्पर साक्षात्कार करने का उसे एक सुयोग मिल बैठा था।

—कि इसी समय, मालूम नहीं कब, पीछे से शचीश आकर खड़ा हो गया। उस समय दामिनी की आंखों से आंसू झर रहे थे। बात

वैसे कुछ भी नहीं थी, किन्तु उस दिन उसकी सारी बातें जैसे आंसुओं से धुलकर अंतर की गहराई में से होती हुईं बाहर आ रही थीं।

शचीश जिस समय चला आया, उस समय भी कीर्त्तन का संबाद ख़त्म होने में काफ़ी देरी थी। मैं समझ गया कि इतनी देर से उसके भीतर सिर्फ़ धक्का-धुक्की ही चल रही थी। शचीश को सहसा सामने देख दामिनी चटपट आंखें पोंछती हुई बग़ल के कमरे की तरफ़ जाने लगी। शचीश ने कांपते हुए स्वर में पुकारा, दामिनी, सुनती जाओ, एक बात है।

दामिनी धीरे-धीरे फिर बैठ गई। मुझे उठूं-उठूं करते देख उसने मेरी ओर कुछ इस भाव से ताका कि मैं फिर उठ ही नहीं सका, वहीं कस गया।

शचीश ने कहा, हम लोग जिस प्रयोजन से गुरुजी के निकट आए हैं, तुम तो उस प्रयोजन से नहीं आईं?

दामिनी बोली, नहीं।

शचीश बोला, तब किसलिये तुम भक्तों के बीच बनी हुई हो?

दामिनी की दोनों आंख जैसे भक् से जल उठीं, वह बोली, क्यों बनी हुई हूं? मैं क्या अपनी साध से यहां हूं? तुम्हारे भक्तगण इस भक्तिहीना को भक्ति के क़ैदख़ाने में बेड़ी पहनाकर बंदी जो किए हुए हैं! क्या तुम लोगों ने मेरे लिये कोई और रास्ता भी रख छोड़ा है?

शचीश बोला, हम लोगों ने तै किया है कि तुम यदि अपनी किसी

रिश्तेदारिन के यहां जाकर रहने लगो तो हम तुम्हारे खर्च-पानी का तमाम बंदोबस्त कर देंगे।

तुम लोगों ने तै किया है?

हां।

तो किया होगा, लेकिन मैंने तै नहीं किया।

क्यों? इसमें तुम्हें कौन-सी अड़चन है?

तुम लोगों में से कोई भक्त पुरुष किसी एक उद्देश्य से मेरे लिये एक तरह का बंदोबस्त करेंगे और कोई अन्य भक्त किसी अन्य मतलब से कोई दूसरा! तो मैं क्या तुम लोगों के आमोद-प्रमोद के लिये पांसे की गोटी हूं?

शचीश हैरान होकर ताकता रहा।

दामिनी ने कहा, मुझे तुम लोग पसंद करोगे, इस भरोसे—अपनी साध से—तुम लोगों के बीच नहीं आई; और आज तुम लोग पसंद नहीं करते, इसीलिये तुम लोगों की मर्ज़ी को सिर-आखों झेलकर यहां से चली जाऊंगी—सो भी नहीं होगा!

—कहते-कहते मुंह पर दोनों हाथ ढककर आंचल दबाती हुई वह रो पड़ी, और शीघ्र ही वहां से उठकर कमरे में भागकर उसने भीतर से कपाट बंद कर लिए।

उस दिन फिर शचीश कीर्त्तन सुनने नहीं गया; उसी छत पर धरती पर ही चुपचाप बैठा रहा। उस दिन दक्खिन की हवा के साथ सुदूर सागर की लहरों का शब्द पृथिवी की छाती के भीतर संचित रुलाई के समान नक्षत्रलोक की ओर उठता जान पड़ा। मैं बाहर आकर गांव के सुनसान रास्ते पर अंधियारे में अकेला टहलने लगा।

४

गुरुजी ने हम दोनोंको रस के जिस स्वर्गलोक में बांध रखने का प्रयत्न किया था, आज यह मिट्टी की धरती उसे ही तोड़-फोड़ डालने के लिये कमर कसकर पीछे पड़ गई है। इतने दिन रूपक के प्याले में भाव का रस भर-भरकर उन्होंने हमें ग़र्क़ कर रखा था। अब की बार जब स्वयं रूप आकर रूपक के साथ टकराया तो प्याले को औंधा होकर धरती पर गिरने के लिये प्रस्तुत होते देरी नहीं लगी। आसन्न विपद् के लक्षण भी गुरुजी की आंखों से ओझल नहीं रहे।

शचीश आजकल मालूम नहीं कैसा अजब-सा हो गया है। जिस पतंग की डोर टूट गई हो उसके समान हवा में वह डोल तो अब भी रहा है, किन्तु कन्नी खाकर गिर पड़ने में अब और विलंब नहीं। जप-तप अर्चना-आलोचना में यों बाहर की तरफ़ से तो कोई ख़ास क़सर नहीं दीखती, किन्तु उसकी आंखों की ओर देखते ही समझ में आ जाता कि भीतर-ही-भीतर उसका पाया सरक रहा है।

और मेरे बारे में तो कुछ भी अनुमान करने का रास्ता दामिनी ने रख ही नहीं छोड़ा है। वह इस बात को जितना ही साफ़ समझने लगी कि गुरुजी मन-ही-मन भय, और शचीश मन-ही-मन पीड़ा अनुभव कर रहा है, उतना ही वह मुझे लेकर और भी अधिक खींचातानी करने लगी। आख़िर बात यहां तक पहुंची कि यदि कभी मैं, शचीश और गुरुजी बैठे बातें कर रहे हों तो उसी समय दरवाज़े के पास आकर दामिनी बुला जाती है: श्रीविलास बाबू, ज़रा सुनिए तो!—श्रीविलास

बाबू से आख़िर उसे काम क्या है, सो भी सबके आगे नहीं कहती। गुरुजी मेरे चेहरे की तरफ़ ताकते हैं, शचीश मेरे मुंह की ओर देखता है और मैं भी तनिक देर उठूं-कि-न-उठूं करते-करते दरवाज़े की ओर दृष्टि दौड़ाकर सीधा बाहर चला जाता हूं। मेरे चले जाने पर भी कुछ देर बातचीत का सिलसिला बनाए रखने की कोशिश होती है, लेकिन बातचीत की अपेक्षा वह कोशिश ही बड़ी हो उठती है, और इसके बाद फिर ख़ुद बातचीत ही बंद हो जाती है। इसी तरह सब ओर की सुव्यवस्था में बेहद तोड़-फोड़ चूर-मार और बेतरतीबी चलने लगी—किसी भी तरह एक चीज़ के साथ दूसरी चीज़ मानो अपना गँठबंधन स्वीकार ही नहीं करना चाहती।

हम दोनों ही गुरुजी के दल के प्रधान वाहक हैं; हमें उच्चैःश्रवा और ऐरावत कहने में भी कोई भूल नहीं। अतएव गुरुजी सहज में हमारी आस नहीं छोड़ सकते। उन्होंने दामिनी के पास आकर कहा, मां दामिनी, इस बार किसी बहुत दूर और दुर्गम स्थान को जाऊंगा; तुम्हें तो यहीं से लौट जाना होगा।

कहां?

अपनी मौसी के यहां।

सो मुझसे नहीं होगा।

क्यों?

एक तो वे मेरी सगी मौसी नहीं हैं; दूसरे, वे मेरा चाहती ही क्या हैं जो मुझे अपने घर रखेंगी?

तुम्हारा ख़र्च उन्हें न उठाना पड़े ऐसा प्रबंध—

सो झंझट क्या केवल ख़र्च का ही है? उन्हें जो मेरी देख-रेख

और ख़बरदारी रखनी होगी, उसकी ज़िम्मेवारी उनपर क्योंकर डाली जा सकती है।

तो मैं क्या तुम्हें हमेशा अपने साथ ही लिए फिरूंगा ?

इसका भी उत्तर क्या आप मुझसे ही मांगते हैं ?

मान लो मैं मर जाऊं तो तुम कहां जाओगी ?

यह सब सोचने का भार मुझपर किसीने नहीं रखा। मुझे तो केवल इतनी ही बात भलीभांति समझाई गई है कि मेरी मौसी नहीं हैं, बाप नहीं हैं, भाई नहीं हैं ;—घर नहीं, द्वार नहीं, पैसा नहीं, कौड़ी नहीं—कुछ भी नहीं ! इसीलिये मेरा बोझा बहुत बड़ा बोझा है। उस बोझ को आपने बड़ी साध ही से ले रखा है, उसे अब आप दूसरों के कन्धों नहीं लाद सकते।—यह कहती हुई दामिनी वहां से चली गई। गुरुजी ने हताश भाव से लंबी सांस लेकर पुकारा, हे मधुसूदन !

एक दिन दामिनी का हुक्म हुआ कि उसके पढ़ने के लिये कुछ अच्छी-अच्छी किताबें मंगवा देना होंगी। यहां यह कहने की ज़रूरत नहीं कि अच्छी-अच्छी किताबों से दामिनी का मतलब 'भक्तिरत्नाकर' से नहीं था। मुझपर किसी भी तरह का दावा करते हुए उसे कोई संकोच नहीं होता था। उसने यह मान ही लिया था कि मुझपर दावा करना ही मेरे प्रति सबसे बड़ा एहसान करना है। वनस्पति-जगत् में कोई-कोई पेड़ ऐसे होते हैं कि जिनके डाल-पत्तों को छांटते रहने से ही वे कुशल-पूर्वक बने रहते हैं। दामिनी ने अपने सम्पर्क में मुझे भी कुछ-कुछ उसी जाति का आदमी मान लिया है।

मैंने जिस लेखक की किताबें बुलवा दीं वह आदमी ख़ालिस

आधुनिक साहित्यक था। उसकी रचना में मनु की अपेक्षा मानव का प्रभाव कहीं अधिक ज़बर्दस्त था। पुस्तकों का पैकेट गुरुजी के हाथों जा पड़ा। उन्होंने तेवर बदलते हुए पूछा, क्यों जी श्रीविलास, ये सब किताबें किसलिये ?

मैं चुप रहा।

गुरुजी दो चार सफ़े उलटकर बोले, इनमें सात्विकता की गन्ध तो ख़ास कुछ भी नहीं मिल रही।—संक्षेप में, यह लेखक उन्हें क़तई पसन्द नहीं।

मैं जल्दी में कह बैठा, अगर तनिक ध्यान देकर देखें तो सात्विकता की गन्ध न सही, सत्य की गन्ध ज़रूर पाइएगा।

दर असल बात यह है कि मेरे भीतर ही भीतर विद्रोह घुमड़ रहा था। भाव के नशे की ख़ुमारी से मैं एकदम जर्जर हो रहा था। मनुष्य को दूर हटाकर केवल-मात्र मनुष्य की हृदय-वृत्तियों को लेकर दिनरात इस तरह झकझोरने से जहां तक अरुचि होना स्वाभाविक है, वहां तक होने में कोई क़सर नहीं रह गई थी।

गुरुजी दम भर मेरी ओर ताकते रहे, फिर बोले, अच्छा, तो एक बार ध्यान देकर ही देखा जाय।—यह कहकर उन्होंने पुस्तकें अपने तकिए के नीचे दबा लीं। मैं समझ गया कि लौटाने की उनकी नीयत नहीं है।

दामिनी ने ज़रूर आड़ से इस घटना का आभास पा लिया होगा। वह दर्वाज़े के पास आकर मुझसे बोली, आपसे जो किताबें मंगवाई थीं, वे क्या अब तक नहीं आईं ?

मैं चुप।

गुरुजी बोले, मां, वे किताबें तो तुम्हारे पढ़ने योग्य नहीं।

दामिनी ने पूछा, आपने कैसे जाना ?

गुरुजी भ्रू कुञ्चित करके बोले, तो तुम्हीं किस तरह जानती हो ?

मैंने पहले भी पढ़ी हैं ; आपने ही शायद नहीं पढ़ीं !

तब फिर पढ़ने की क्या ज़रूरत है ?

जी, आपकी तो किसी ज़रूरत में कभी कोई बाधा ही नहीं पड़ सकती, सिर्फ मेरी ही बेर यह तै कर लिया गया है कि मुझे कभी किसी चीज़ की कोई ज़रूरत पड़ ही नहीं सकती ?

मैं संन्यासी हूं यह तुम अच्छी तरह जानती हो ?

और मैं संन्यासिनी नहीं हूं यह आप भी अच्छी तरह जानते हैं। मुझे वे पुस्तकें पढ़ते भली लगती हैं—बस ! दीजिए !

गुरुजी ने तकिए के नीचे से किताबें निकालकर मेरे हाथ के पास छितरा दीं। मैंने उन्हें समेटकर दामिनी की ओर सरका दिया।

इस घटना का परिणाम यह हुआ कि दामिनी जो किताबें अपने कमरे में बैठकर अकेली पढ़ा करती थी, उन्हें मुझे बुलवाकर सुनाने के लिये कहती। बरामदे में बैठकर हमारा पढ़ना-लिखना होता, आलोचना चलती,—शचीश बार-बार सामने से होकर गुज़रता। चाहता कि साथ बैठ जाए, लेकिन अनाहूत भाव से बैठ नहीं पाता।

एक दिन किसी किताब में कोई बहुत सुन्दर परिहास की बात निकल आई जिसे सुनकर दामिनी खिलखिलाकर हंस पड़ी। उसकी हंसी मानो रुकना ही नहीं चाहती। हमारा ख्याल था कि आज मन्दिर

में मेला भरा है ; शचीश वहीं गया होगा। अचानक देखता हूं कि पिछली तरफ़ के कमरे का दर्वाज़ा खोलकर शचीश निकल आया और हम लोगों के साथ ही बैठ गया।

उसी क्षण दामिनी की हंसी एकदम बंद हो गई, मैं भी इसके लिये ज़रा तैयार-सा नहीं था। सोचा, शचीश के साथ कुछ बातें करूं, किन्तु बात खोजे न मिली। चुपचाप किताब के सफे़ उलटने लगा। शचीश जिस तरह अचानक आकर बैठ गया था, वैसे ही औचक उठकर चला गया। उस दिन फिर हम लोगों का पढ़ना और आगे न बढ़ सका। शचीश शायद यह बात न समझ पाया कि मेरे और दामिनी के बीच जिस ओट के न होने की कल्पना करके वह मुझसे ईर्ष्या करता है, वास्तव में उसके और दामिनी के बीच उसी ओट के विद्यमान होने के कारण मैं उससे ईर्ष्या करता हूं।

उसी दिन शचीश गुरुजी के पास जाकर बोला, प्रभु, कुछ दिन अकेले समुद्र की तरफ़ घूम आना चाहता हूं, ह़फ्ते भर के भीतर ही लौट आऊंगा।

गुरुजी बहुत उत्साह के साथ बोले, ख़ूब अच्छी बात है, अवश्य हो आओ !

शचीश चला गया। दामिनी ने न तो फिर मुझे पढ़ने के लिये बुलवाया, और न उसे मेरी कोई अन्य ज़रूरत ही पड़ी। उसे मुहल्ले की स्त्रियों के साथ भी ग़पशप करते नहीं देखा। अक्सर कमरे में ही रहती; कमरे का दरवाज़ा प्रायः बन्द रहता।

कुछ दिन और भी बीत गए। एक रोज़ गुरुजी दुपहर को सो रहे थे; मैं छत के बरामदे में बैठा चिट्ठी लिख रहा था—कि इसी समय

सहसा शचीश आगया और बिना मेरी ओर दृष्टिपात किए, दामिनी के बन्द दरवाज़े पर धक्का देकर बोला, दामिनी, दामिनी !

दामिनी झटपट दरवाज़ा खोलकर बाहर आई। शचीश का चेहरा भला यह कैसा हो गया है ! प्रचण्ड तूफ़ान का झपट्टा खाए हुए, फटे पाल और टूटे मस्तूलवाले जहाज़ की तरह उसका भाव है ; आंखें दोनों कैसी-कैसी, केश उलझे-सुलझे, मुंह सूखा और फीका, कपड़े बिल्कुल ही मलिन। शचीश बोला, दामिनी, मैंने तुमसे चले जाने के लिये कहा था, वह मेरी भूल थी, मुझे माफ़ करो !

दामिनी हाथ जोड़कर बोली, यह आप क्या कह रहे हैं !

नहीं, मुझे माफ़ करो दामिनी। हम लोग अपनी ही साधना के सुभीते के लिये तुम्हें मर्ज़ी-मुताबिक़ साथ रखें या दूर हटाएं, इतना बड़ा अपराध अब मैं कभी मन में भी नहीं लाऊंगा। किन्तु तुमसे भी मेरा एक अनुरोध है जो तुम्हें मानना ही होगा।

दामिनी ने तत्काल झुककर शचीश के दोनों पावं छूते हुए कहा, मुझे आज्ञा दो तुम।

शचीश बोला, तुम हमारा साथ दो, दामिनी, अपने को इस तरह अलग-अलग मत रखो !

दामिनी ने कहा, यही होगा, मैं अब कोई अपराध नहीं करूंगी। —यह कहकर फिर नत होकर पांवों की धूलि लेते हुए उसने शचीश को प्रणाम किया, और फिर कहा, मैं अब कोई अपराध नहीं करूंगी।

५

कठिन पाषाण एक बार फिर गला। दामिनी की जो यथार्थ दीप्ति थी उसका प्रकाश तो बना रहा, किन्तु ताप मिट गया। पूजा-अर्चना सेवा-जतन के भीतर से माधुर्य का फूल खिल उठा। जब कीर्तन की धुन जमती, जब गुरुजी हमारे साथ ज्ञान-चर्चा के लिये बैठते, जब वे गीता अथवा भागवत की व्याख्या करते, तब दामिनी कभी पल भर के लिये भी अनुपस्थित न रहती। उसकी सजधज में भी परिवर्तन हो गया। उसने फिर अपनी वही टसर की सीधी-सादी सफ़ेद साड़ी पहन ली; दिन में जब भी वह दिखाई पड़ती तो ऐसा मालूम होता जैसे अभी-अभी स्नान करके शुचि-शुभ्र होकर आई हो।

गुरुजी के संस्पर्श में ही उसकी सबसे कड़ी परीक्षा होती। उन्हें जब वह प्रणाम करने के लिये नत होती, तब मैं उसकी आंखों के कोनों में एक रुद्र तेज की झलक साफ़ देख पाता। मैं अच्छी तरह समझ रहा था कि गुरुजी के किसी भी हुक्म को वह मन ही मन ज़रा भी सह नहीं पाती, किन्तु उनकी सभी बातें उसने एकांत भाव से मान ली हैं। यहां तक कि एक दिन बंगला के उसी विषम आधुनिक लेखक की दुर्विषह रचना के विरुद्ध साहसपूर्वक गुरुजी ने अपना एतराज भी ज़ाहिर कर दिया। दूसरे दिन देखा गया कि दुपहरिया में उनके विश्राम करने के कमरे में बिछौने के पास कितने ही फूल रखे हुए हैं; ये फूल उसी आदमी की पुस्तक के फाड़े हुए पन्नों पर सजाए हुए हैं।

मैंने यह बात कई बार देखी थी कि गुरुजी जब शचीश को अपनी

परिचर्या के लिये बुलाते, तो वह स्थिति दामिनी के लिये सबसे अधिक असह्य हो उठती। वह जैसे-तैसे उसे वहां से कहीं और भेजकर उसका काम ख़ुद हो कर देने की कोशिश करती, लेकिन हर बार वैसा संभव नहीं होता। इसीलिये शचीश जब गुरुजी के हुक्के की चिलम को सुलगाते हुए फूंक लगाता, तब दामिनी प्राणपण से मन-ही-मन अपनी वही प्रतिज्ञा जपती : अपराध नहीं करूंगी, अपराध नहीं करूंगी! लेकिन शचीश ने वास्तव में जो कुछ सोचा था, वह तो कुछ भी नहीं हुआ! इसी तरह पहले भी एक बार जब दामिनी समर्पण का अर्घ्य लेकर नत हुई थी, तब भी शचीश ने केवल उसके अतंरस्थ 'माधुर्य' को ही देखा; जो 'मधुर' था उसे नहीं। किंतु इस बार स्वयं दामिनी ही शचीश के निकट इस प्रकार सत्य हो उठी कि भजन-कीर्त्तन की लड़ियों और तत्त्व के उपदेशों को ठेलकर वही सबके आगे सुस्पष्ट दिखाई देती; उसे आज किसी भी तरह ढककर नहीं रखा जा सका। शचीश उसे इतने सुस्पष्ट रूप में देख पाता कि उसके भक्तिभाव का नशा ही टूट जाता। उसे वह किसी भी तरह अरूप भाव-रस का रूपक मात्र नहीं समझ पाता। आज दामिनी भक्ति के उन गीतों को अपने कंठ द्वारा सजाकर सुंदर नहीं बनाती, बल्कि वे गीत ही दामिनी को संवारकर सुंदर और सजीला बना डालते हैं।

यहां एक और छोटी-सी बात कह रखूं, दामिनी को अब मेरी कोई ज़रूरत नहीं रह गई। मेरे पास उसकी सारी फ़रमाइश अचानक एकदम बन्द हो गई। मेरे जो सहयोगी थे, उनमें चील तो मर चुकी, नेवला भाग गया; कुत्ते के पिल्ले के अनाचार से गुरुजी तंग थे, इसलिये दामिनी ने ही उसे किसीको दान कर दिया।

इस तरह फिर बेकार और बेसाथी हो जाने से मैं दुबारा गुरुजी के दरबार में पहले के समान भर्ती हो गया, यद्यपि वहां की सारी बातचीत और गाना-बजाना मुझे इस बार बिलकुल ही बेस्वाद लगने लगे।

६

एक दिन शचीश कल्पना के उन्मुक्त पात्र में पूरब और पच्छिम, अतीत और वर्त्तमान के समस्त दर्शन और विज्ञान, रस और तत्त्व को एक साथ पकाकर एक अपूर्व अर्क उतार रहा था, कि इसी समय हठात् दामिनी दौड़ती हुई आकर बोली, अजी, एक दफ़ा जल्दी इधर तो आओ!

मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा और पूछा, क्या हुआ?

दामिनी बोली, नवीन की घरवाली ने शायद ज़हर खा लिया है।

नवीनचन्द्र हमारे गुरुजी के किसी चेले का रिश्तेदार, हमारा पड़ोसी और हमारे कीर्त्तन-दल का एक गायक है। हम लोगों ने जाकर देखा कि उसकी स्त्री तब तक समाप्त हो चुकी है। पता लगाने पर जो क़िस्सा खुला हुआ वह इस तरह है: नवीन की स्त्री ने अपनी मातृहीना बहन को अपने पास लाकर रखा था। वे लोग कुलीन ठहरे, अतएव लड़की के लायक़ पात्र मिलना कठिन था। लड़की देखने में फबोली थी; नवीन के छोटे भाई ने उसे ब्याह के लिये पसन्द भी किया था। सभी कुछ ठीक हो चुका था। इसी बीच नवीन की स्त्री को पता लगा कि उसके पति और उसकी

बहन दोनों में एक-दूसरे के प्रति आसक्ति पैदा हो उठी है। तब उसने पति से अपनी बहन के साथ शादी करने के लिये अनुरोध किया। कोई ख़ास जबर्दस्ती इसके लिये उसे नहीं करनी पड़ी ; पतिदेवता अनायास ही राज़ी होगए। विवाह ख़त्म होने पर नवीन की पहली स्त्री ने आज विष खाकर आत्महत्या कर ली है।

उस समय कोई ख़ास काम करने को नहीं था ; हम लोग लौट आए। गुरुजी के निकट बहुत से शिष्य आ जुटे, और उन्हें कीर्त्तन सुनाने लगे ; गुरुजी कीर्त्तन में शामिल होकर नाचने लगे।

तब रात के शुरू पहर का चांद आकाश में निकल आया था। छत के जिस कोने की तरफ फरहद के पेड़ की कुछ शाख़ें झुक आई थीं, वहीं छाया और प्रकाश से बुने आसन पर दामिनी चुपचाप बैठी थी। शचीश उसके पीछे की ओर के छायादार बरामदे में धीरे-धीरे चहल-क़दमी कर रहा था। डायरी लिखने का मुझे रोग-सा है, सो मैं कमरे में अकेला बैठा लिख रहा था।

उस दिन अमराई में मानो कोयल की पलकों में नींद ही नहीं थी। दक्खिन की हवा में पत्तों के मुंह से जैसे बोल फूटना चाहते थे। उनपर चांद का उजाला झलमल कर रहा था। अचानक किसी समय शचीश के जी में क्या आया, वह दामिनी के पीछे आकर ठुक खड़ा हो गया। दामिनी ने चौंककर सिर पर कपड़ा खींचा और वहां से चटपट चले जाने का उपक्रम किया।

शचीश ने पुकारा, दामिनी —

दामिनी रुककर खड़ी हो गई। फिर हाथ जोड़कर बोली, प्रभु, मेरी एक बात सुनो।

शचीश ने चुपचाप उसके मुंह की ओर ताका। दामिनी बोली, मुझे इतना समझा दो कि तुम लोग दिनरात जिसे लेकर पागल हो रहे हो, उससे संसार में किसका कौन-सा प्रयोजन सधता है? तुमने कब किसका उद्धार किया?

मैं कमरे से निकलकर बाहर बरामदे में आ खड़ा हुआ। दामिनी बोली, तुम लोग रात और दिन केवल 'रस' की पुकार मचाए हो, उसे छोड़ तुम्हारे पास और कोई बात ही नहीं। रस क्या है सो तो आज अपनी आंखों देख लिया न?—उसके न धर्म है न कर्म, न भाई है न स्त्री, न कुल न मान। उसके दया-माया नहीं, श्रद्धा-विश्वास नहीं, लाज-शर्म नहीं। इस निर्लज्ज निष्ठुर सत्यानाशी रस के रसातल से मनुष्य की रक्षा करने का तुमने क्या उपाय किया है?

मुझसे रहा नहीं गया, बोल उठा, हमने स्त्रियों को अपनी चहार-दीवारी से दूर खेदकर ख़ूब निरापद स्थान में रस की साधना करने का कौशल रचा है।

मेरी बात पर ज़रा भी कान न देकर दामिनी शचीश से कहती गई, मैंने तो तुम्हारे गुरु के निकट कुछ भी नहीं पाया! वे तो मेरे चञ्चल मन को पल भर भी शान्त नहीं कर पाए। आग से आग नहीं बुझाई जाती। तुम्हारे गुरु जिस पथ पर सबको चला रहे हैं, वहां न धैर्य है, न वीर्य, और न शान्ति। आज जो वह छोकरी मर गई, रस के मार्ग में, रस की राक्षसी ने ही तो उसकी छाती का ख़ून सोखकर उसे मार डाला। कैसा कुत्सित चेहरा था उसका सो तो तुमने साक्षात् ही देख लिया न? प्रभु, हाथ जोड़कर कहती हूं, उस राक्षसी के निकट मेरा बलिदान मत कर देना। मुझे बचाओ! अगर मुझे कोई बचा सकता है तो वह तुम्हीं हो!

पल भर के लिये हम तीनों ही स्तब्ध हो रहे। चारों ओर सब कुछ इस तरह खामोश हो उठा कि मुझे ऐसा जान पड़ा मानो झिल्ली के रव से पांडुवर्ण आकाश की सारी देह झनझनाने का उपक्रम करनेवाली हो।

शचीश बोला, मैं क्या कर सकता हूं सो कहो?

दामिनी बोली, तुम्हीं मेरे गुरु होओ। मैं और किसीको नहीं मानूंगी। मुझे ऐसा कुछ मन्त्र दो जो सचमुच ही इस सबसे कहीं ऊपर की वस्तु हो—जिसके सहारे मैं बच सकूं। मेरे साथ मेरे आराध्य देवता को भी तुम मत नष्ट होने दो!

शचीश स्तब्ध भाव से खड़े होकर बोला, यही होगा।

दामिनी शचीश के पावों के पास धरती पर माथा टेककर बहुत देर तक प्रणाम किए रही और बारबार केवल यही गुनगुनाती रही, तुम्हीं मेरे गुरु हो, तुम्हीं मेरे गुरु हो। मुझे सब प्रकार के अपराधों से बचाओ, बचाओ, बचाओ!

परिशिष्ट

अखबारों में एक दिन फिर कानाफूसी और गाली-गलौज का तूफ़ान मच गया कि शचीश के मत में फिर परिवर्तन हो गया है! एक दिन अति उच्चस्वर से वह न जात-पांत मानता था, न धर्म। फिर इसके बाद एक दिन अति उच्चस्वर से उसने खाना-पाना, छुआछूत, संध्या-तर्पण, योग-याग, देवी-देवता कुछ भी मानते बाक़ी नहीं रखा। इसके बाद एक दिन ऐसा भी आया कि इसका राशि-राशि बोझा एक तरफ़ झाड़कर वह शांत होकर एक किनारे बैठ रहा: उसने क्या माना और क्या नहीं सो कुछ भी समझ में नहीं आया। सिर्फ इतना ही देखने में आया कि पहले की तरह वह फिर जी-जान से काम में भिड़ गया है। किन्तु इस बार उसमें झगड़ा-फ़साद का उग्र तीखापन बिल्कुल नहीं है।

और भी एक मामले के बारे में अखबारों में बेहिसाब व्यंग्य और कटूक्ति की बौछार की गई है, वह यह कि मेरे साथ दामिनी का विवाह हो गया है। इस विवाह का रहस्य सब लोग नहीं समझेंगे और शायद ज़रूरत भी नहीं है समझने की!

श्रीविलास

१

इस स्थान पर किसी समय गोरे साहबों की एक नीलकोठी खड़ी था। आज केवल खंडहर के नाम उसके थोड़े से टूटे-फूटे कमरे-भर बाक़ी हैं। दामिनी की मृतदेह का दाह-संस्कार करके देश लौटते समय मुझे यह स्थान बहुत भा गया था, इसीसे कुछ दिन के लिये वहीं रम गया।

नदी से लेकर कोठी तक आनेवाले रास्ते के दोनों ओर शीशम के पेड़ों की क़तार है। बाग़ के प्रवेशद्वार पर बाहरी फाटक के दो टूटे हुए खंभे और चहारदीवारी का कुछ हिस्सा अब भी अवशिष्ट है, लेकिन बाग़ अब नहीं रहा है। बाक़ी बची हुई चीज़ों के नाम एक कोने में कोठी के किसी मुसलमान गुमाश्ते की क़ब्र-भर है जिसकी हर संधि से झुंड-के-झुंड आक और भाँट—भांडीरक—फूलों के झंखाड़ सिर उठा रहे हैं,—सिर से पैर तक फूलों से लदे। सोहाग-रात में कोहबर-घर के भीतर वर की चंचल सालियां जिस तरह मज़ाक़ की शरारत से वर के कान मलकर हंसी की हिलोर में डूब जाती हैं, उसी तरह मृत्यु के कान मलकर ये पौधे दक्षिण-पवन में हंस-हंसकर मानो लोटपोट हो रहे हैं। पार टूट जाने से पोखर का पानी बहकर सूख चुका है; उसकी तली में धनियां के साथ चने की मिलावट करके किसानों ने खेती की है। जब मैं सुबह के समय सील

खाई हुई ईंटों के टीले पर शीशम की छाया-तले बैठा रहता हूं, उस समय धनियां के फूलों की ख़ुशबू से दिमाग़ गनगना उठता है।

बैठा-बैठा सोचा करता : यह नील का कोठी जो आज मेरे द्वारों के गढ़े में फेंकी हुई गाय की ठठरी की तरह पड़ी हुई है, किसी दिन सजीव रहा होगा। उसने अपने चारों ओर सुख-दुःख की जो लहरियां उठाई थीं, उनका तूफ़ान कभी शांत नहीं होगा—शायद उस दिन उसने अहंकारवश ऐसा ही सोचा होगा। यहीं पर बैठे-बैठे कोठी के जिस प्रचंड गोरे साहिब ने हज़ारों ग़रीब खेतिहरों का ख़ून पानी कर डाला होगा, उसके सामने मेरे-जैसे एक सामान्य बंगाली लड़के की भला हस्ती ही क्या! लेकिन फिर भी धरती ने अपने सब्ज़ रंग का आंचल कमर में खोंसकर, किसी तत्पर गृहिणी के समान, अनायास ही उस साहिब-समेत उस समूची नीलकोठी को ख़ूब अच्छी तरह मिट्टी से मांज-घिसकर निखार दिया है। यहां-वहां जो एकाध पुराना दाग़ दिखाई पड़ता है, वह भी एकाध लीप-पोत और पड़ते ही बिल्कुल साफ़-झक् हो जाएगा।

बात पुरानी है, मैं उसे आज दुहराने नहीं बैठा। मेरा मन कहता है : अजी नहीं, यह जो हर रोज़ नया सवेरा—उजाले की तरह—खिल उठता है, यह केवल काल-देवता का आंगन लीपना-मात्र नहीं है। नील-कोठी का वह साहब और उसकी नीलकोठी की वह विभीषिका ज़रा-सी धूलि-चिन्ह की तरह भले ही पुछ गए हों, लेकिन मेरी दामिनी!

मुझे मालूम है, मेरी बात कोई नहीं सुनेगा। शंकराचार्य का 'मोहमुद्गर' किसीको रिहाई कहां देता है। 'मायामयमिदमखिलं' ...इत्यादि इत्यादि कितनी ही बातें तो बैरागियों के शास्त्र में

लिखी है। किन्तु शंकराचार्य संन्यासी थे—'का तव कान्ता कस्ते पुत्रः'—यह सब उन्होंने कहा ज़रूर था लेकिन उसका अर्थ उन्होंने नहीं जाना। चूंकि मैं संन्यासी नहीं हूं, इसीलिये अच्छी तरह जानता हूं कि दामिनी कमल के पत्तों पर पल भर के लिये झलकने-वाली ओस की बूंद नहीं थी—वह सत्य थी।

किंतु सुनता हूं, गृहस्थ लोग भी ऐसी ही वैराग्य की बातें कहा करते हैं। सो कहते होंगे। ऐसे लोग बेचारे केवलमात्र गृही हो पाते हैं—गृहिणी को उपलब्ध नहीं कर पाते। उनका गृह भी सचमुच माया ही समझिए, और गृहिणी भी कोई सत्य नहीं। वे सब हाथ की गढ़ी हुई चीजें हैं कि झाड़ू फिरते ही साफ़!

मुझे तो गृही होने का समय ही नहीं मिला; और संन्यासी होना मेरी प्रकृति में ही नहीं है—यही ग़नीमत है। इसीसे मैंने जिसे अपने निकट पाया वह गृहिणी भी नहीं हुई, माया भी नहीं। वह सत्य ही बनी रही,—वह आदि से अंत तक दामिनी ही थी। उसे छाया कह सके—ऐसा साहस किसे है! यदि मैं दामिनी को केवल घर की गृहिणी के रूप में ही जानता तो बहुत-सी बातें नहीं लिख पाता। मैंने उसे उस संबंध की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ी और सत्य वस्तु के रूप में जाना है, इसीसे सारी बातें खुलासा करके लिख सका हूं, लोग चाहे जो कहें।

माया के जगत् में मनुष्य जिस तरह दिन काटा करता है, उसी तरह दामिनी के साथ भी यदि मैं पूरी तरह घर-गिरिस्ती कर पाता तो तेल मलकर स्नान करके, आहारान्ते इत्मीनान से पान चबाकर बेफ़िक्र ज़िन्दगी गुज़ार देता। और दामिनी की मृत्यु के पश्चात् लंबी

सांस खींचकर कहता, 'संसारोऽयमतीव विचित्रः'। और इतना ही नहीं, संसार के वैचित्र्य की एक बार फिर से परीक्षा करने के लिये किसी बुआ अथवा मौसी का अनुरोध भी शिरोधार्य कर लेता। किंतु पुराने जूते के जोड़े में जिस तरह सहज ही पांव चला जाता है, उस तरह अति सहज भाव से तो मैंने संसार में प्रवेश किया नहीं था—शुरू से ही सुख की प्रत्याशा छोड़ दी थी। लेकिन नहीं, यह बात भी सही नहीं है,—सुख की प्रत्याशा छोड़ दूं, इतना बड़ा अमानुष मैं नहीं हूं। सुख की आशा तो अवश्य करता था, किंतु सुख का दावा करने का अधिकार मैंने नहीं रख छोड़ा था, इतनी बात ही शायद सच है।

क्यों नहीं रख छोड़ा था? कारण यह है कि मैंने अपनी ही ओर से दामिनी को ब्याह के लिये राज़ी किया था। किसी रंगीन रेशमी परिधेय के झीने घूंघट-तले, शाहाना रागिनी की तान पर और शहनाई के सुर में तो हमारी 'शुभदृष्टि'—प्रथम-दर्शन—हुआ नहीं था। दिन के प्रखर उजाले में सब कुछ देख-सुनकर और समझ-बूझकर ही मैंने यह कार्य किया था।

लीलानन्द स्वामी को छोड़कर जब मैं चला आया, तब नून-तेल-लकड़ी की बात सोचने का अवसर आया। इतने दिन तक जहां गया, वहीं ख़ूब छककर गुरु का प्रसाद पाता रहा, सो अब तक भूख की अपेक्षा अजीर्ण की पीड़ा ने ही अधिक भुगाया था। दुनिया में मनुष्य को घर बसाना पड़ता है, उसकी रखवाली करनी होती है, और कम-से-कम मकान तो भाड़े पर लेना ही होता है, ये सब बातें हम भूल ही चुके थे; केवल यही जानते थे कि घर में निवास किया जाता है। हमने यह नहीं सोचा कि गृहस्थ बेचारा कहां हाथ-

पैर सिकोड़कर ज़रा-सी जगह कर लेगा ; यह चिन्ता गृहस्थ के ही दिमाग़ के लिये छोड़ दी जाती थी कि हम साधु लोग उसकी गिरस्ती में कहां इत्मीनान से हाथ पैर फैलाकर आराम करते रहेंगे।

तभी याद आया कि बड़े चाचा ने अपने वसीयतनामे में अपना मकान शचीश के ही नाम लिख दिया था। वसीयतनामा अगर शचीश के हाथों में रहा होता तो अब तक भाव के स्रोत में रस की तरंगों से टकराकर जाने-कब काग़ज़ की नाव की तरह कहीं डूब गया होता। लेकिन भाग्य से वह मेरे ही हाथ में था—मैं ही उसका एक्ज़ीक्यूटर था। वसीयतनामे में कुछ ऐसी शर्तें थीं, जिनके पालन का भार मेरे ही ऊपर था। तीन प्रधान शर्तें इस प्रकार थीं : इस घर में कभी पूजापाठ नहीं हो सकेगा ; निचले तल्ले में मुहल्ले के मुसलमान और चमार लड़कों के लिये नैशपाठशाला बराबर चलती रहेगी ; और शचीश की मृत्यु के बाद सारा मकान इन्हींकी शिक्षा और उन्नति के लिये उत्सर्ग कर दिया जायगा। संसार में बड़े चाचा का सबसे अधिक क्रोध था पुण्य पर ; वे गिरिस्ती की अपेक्षा इसे ही ज़्यादा हेय वस्तु मानते थे। बग़ल के मकान में पुण्य की जो घोरतर हवा बह रही थी, उसीको निरस्त करने के लिये उन्होंने यह व्यवस्था की थी। अंग्रेज़ी में वे इसे 'सैनेटरी प्रिकाशन्स' कहा करते थे। मैंने शचीश से कहा, चलो, उस कलकत्तेवाले मकान में चलकर रहें—शचीश बोला : अब भी उसके लिये अच्छी तरह तैयार नहीं हो सका हूं।—मुझे उसकी बात समझ में नहीं आई। उसने कहा : किसी दिन 'बुद्धि' पर भरोसा किया था, लेकिन मालूम हुआ कि उसपर जीवन का सारा भार नहीं

टिकाया जा सकता। फिर एक दिन 'रस' पर भरोसा किया, तो देखा कि वहां पैंदी नाम की कोई चीज ही नहीं है। बुद्धि भी मेरी निजी है और रस भी ; सो अपने ही ऊपर खड़ा होना संभव नहीं। और किसी प्रकार का आश्रय पाए बिना मैं शहर लौटने की हिम्मत नहीं करता।

मैंने पूछा : तो क्या करना होगा, बताओ।

शचीश ने कहा : तुम दोनों चले जाओ। मैं कुछ दिनों अकेला ही घूमूंगा। ऐसा जान पड़ता है मानो किसी जगह कुछ कूल-किनारा-सा देख पा रहा हूं। यदि इसी समय उसकी दिशा भूल जाऊं तो वह फिर ओझल हो जाएगा ; उसे फिर नहीं खोज पाऊंगा।

तभी ओट से आकर दामिनी ने मुझसे कहा : सो नहीं हो सकता। अकेले भटकते फिरेंगे तो इनकी देख-भाल कौन करेगा ? वह जो एक बार अकेले निकले थे सो कैसा-कैसा चेहरा लेकर लौटे थे ! मुझे तो उस बात को याद करते ही डर लगने लगता है।

सच बताऊं ? दामिनी के इस उद्वेग से मेरे चित्त में मानो क्रोध ने अपना डंक मारा—दुःसह जलन होने लगी।—बड़े चाचा की मृत्यु के बाद शचीश तो प्रायः दो वर्ष तक अकेला ही घूमता रहा था—उस समय वह मर तो नहीं गया !—मैं ज़रा कड़ुएपन के साथ ही यह कह गया—मन के भाव को दबा नहीं सका।

दामिनी बोली, श्रीविलास बाबू, आदमी के मरने में बहुत समय लगता है, यह बात मुझे मालूम है। किन्तु हम लोग जब हुई हैं तो फिर थोड़ी भी तकलीफ़ इन्हें क्यों होने दें ?

हमलोग ! बहुवचन का कम से कम आधा हिस्सा इस अभागे श्रीविलास का है, सो यही क्या कम है ! पृथ्वी के एक श्रेणी के

आदमियों को दुःख से बचाने के लिये और एक श्रेणी के मानव को दुःख पाना ही होगा। इन्हीं दो जाति के आदमियों को लेकर यह दुनिया है। दामिनी ने इतना तो भली भांति समझ ही लिया है कि मैं किस श्रेणी का आदमी हूं। सो जो हो, मुझे उसने अपने दल में ले लिया, यही मेरा काफ़ी सुख है।

अतएव शचीश से कहा, इस समय शहर नहीं ही गए तो हर्ज क्या है! न सही शहर! तो चलो, नदी किनारे वह जो नीलकोठीवाला खंडहर है, वहीं कुछ दिन बिताए जाएं। अफ़वाह है कि उसमें भूत का उत्पात हुआ करता है, सो कम-से-कम आदमी के उत्पात की संभावना तो वहां नहीं है।

शचीश ने कहा, और तुम दोनों ?

मैंने कहा, हम दोनों भूत ही की तरह, जहां तक संभव होगा, अपने को छिपाकर रखेंगे।

शचीश ने एक बार दामिनी के मुंह की ओर निहारा। दृष्टि में शायद थोड़ी-सी आशंका मिश्रित थी।

दामिनी ने हाथ जोड़कर कहा, तुम मेरे गुरु हो। मैं चाहे कितनी भी पापिष्ठा क्यों न होऊं, मुझे सेवा के अधिकार से वंचित न करना!

२

आप चाहे जो कहें, लेकिन मैं स्वीकार करता हूं कि शचीश की यह साधना की व्याकुलता मेरी समझ में नहीं आई। वैसे एक दिन तो इस चीज़ को हंसकर ही उड़ा दिया था लेकिन आज, और

चाहे जो हो, हंसी बंद हो गई है। यह उल्का का प्रकाश नहीं है, यह तो साक्षात् अग्नि है। एक दिन शचीश में जब इसकी जलन देखी थी, तो उसके आगे बड़े चाचा की चेलागिरी करने का भी साहस नहीं हुआ था। किस भूत पर विश्वास करने से इसका श्रीगणेश हुआ था और किस अद्भुत-तत्त्व में विश्वास जगा रखने से इसका अंत होगा, इस बहस को छेड़कर हर्बर्ट स्पेन्सर के साथ मुक़ाबला करके क्या होगा? स्पष्ट ही तो देख रहा हूं कि शचीश भीतर ही भीतर सुलग रहा है, उसका जीवन इस सिरे से लेकर उस सिरे तक लाल होकर दग-दग कर रहा है।

इतने दिन वह नाचकर, गाकर, रोकर, गुरु की सेवा करके दिन-रात बेचैन था, सो शायद वह भी एक प्रकार से अच्छा ही था। हर घड़ी मन की सारी चेष्टा को निःशेष उंडेलकर वह अपने आपको दिवालिया कर डालता। लेकिन आज जब वह स्थिर होकर बैठ गया है, तो मन को दबा रखने का कोई उपाय हाथ में नहीं रह गया है। आज भाव-संभोग के काल्पनिक जगत् में डूब जाने का अवकाश नहीं; इस समय तो अनुभूति के सत्य लोक में प्रतिष्ठित होने के लिये भीतर ही भीतर ऐसी लड़ाई चल रही है कि शचीश का मुंह देखकर डर लगने लगता है।

एक दिन मुझसे नहीं रहा गया मैं बोला: देखो शचीश, मुझे ऐसा लगता है जैसे इस समय तुम्हें किसी गुरु की आवश्यकता है जिनके सहारे तुम्हारी साधना सहज हो सके।

शचीश चिढ़कर बोल उठा: चुप रहो, विश्री, चुप रहो। जो सहज है उसे भला बाहर से किसीकी क्या ज़रूरत? धोखा ही सहज होता है, सत्य ही कठिन।

मैं डरते-डरते बोला : उसी सत्य को पाने के लिये ही तो रास्ता दिखानेवाला—

शचीश अधीर होकर बोला : अजी यह तुम्हारे भूगोल का सत्य नहीं है—जो जिस किसीने भी दिशा दिखला दी। मेरे अंतर्यामी का आना-जाना सिर्फ मेरे ही रास्ते से हो सकता है—गुरु का रास्ता गुरु के ही आंगन में जाने का रास्ता है।

इसी शचीश के मुंह से कितनी बार कितनी उलटी बातें सुनने मिली हैं। मैं, श्रीविलास, बड़े चाचा का चेला अवश्य हूं, किन्तु उन्हें 'गुरु' कहने पर तो वे मुझे चेला लेकर मारने दौड़ते। उसी श्रीविलास से शचीश ने गुरु के पैर दबवा लिए और फिर दो दिन जाते-न-जाते मेरे ही लिये यह व्याख्यान। मुझे हंसने का भी साहस नहीं हुआ, गंभीर हो रहा।

शचीश बोला, आज मैं स्पष्ट समझ रहा हूं, 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः'—श्लोक का क्या अर्थ है। और सभी चीज़ दूसरेके हाथ से पाई जा सकती हैं, परन्तु यदि धर्म अपना न हो तो वह मारता ही है, बचाता नहीं। मेरे भगवान् दूसरोंके हाथ से मिली हुई मुट्ठीभर भीख नहीं हैं। यदि उन्हें पाऊँगा तो मैं ही उन्हें पाऊँगा, नहीं तो 'निधनं श्रेयः'।

बहस करना मेरा स्वभाव है, मैं सहज ही छोड़नेवाला प्राणी नहीं हूँ। बोला, जो कवि होता है वह मन के भीतर से ही कविता पाता है, जो नहीं होता वह दूसरे से कविता ग्रहण करता है।

शचीश निःसंकोच बोल उठा, मैं कवि हूँ।

बस! झगड़ा ख़त्म हो गया! भला इसपर कोई क्या कहे? मैं चला आया।

शचीश के खाने-सोने आदि का कुछ भी ठिकाना नहीं, कहां रहता है इसका भी उसे होश नहीं। शरीर प्रतिदिन अत्यधिक शाण दी हुई छुरी के समान सूक्ष्म होता जा रहा है। देखने से मालूम होता, अब वह इस अवस्था को और अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। तो भी उसे छेड़ने का साहस नहीं होता। किन्तु दामिनी इसे नहीं सह पाती। भगवान् पर वह कठिन क्रोध करती : जो उनकी भक्ति नहीं करता उसीसे वे हारे रहते हैं और भक्त पर ही इसका बदला चुकाया जाता है! अजी, यह भी भला कोई न्याय है?—लीलानंद स्वामी पर क्रोध करके तो दामिनी बीच-बीच में उनपर अपनी नाराज़ी ज़ाहिर भी ख़ूब कर देती थी, परन्तु भगवान् का पता-ठिकाना जाने बिना ऐसा करने का कोई उपाय ही कहां!

किंतु भगवान् के आगे चाहे न चले, फिर भी शचीश को यथा-समय स्नान-भोजन कराने की चेष्टा से वह कभी पीछे न रहती। इस तीन लोक से न्यारे मनुष्य को नियम में बांधने के लिये वह कितने तरह की हिकमतें करती, इसका कोई हिसाब नहीं

बहुत दिन तक शचीश ने इसका स्पष्ट रूप से कोई प्रतिवाद नहीं किया। एक दिन बड़े सबेरे ही नदी पार करके वह उस पार पानी में निकल आए हुए रेतीले टापू पर चला गया। सूर्य सिर पर आया, फिर पश्चिम की ओर ढलने चला, पर शचीश का तब तक भी पता नहीं। दामिनी निराहार बैठी प्रतीक्षा करती रही। जब नहीं रहा गया तो भोजन की थाली लेकर घुटने-घुटने-भर जल पार करके वह उस किनारे जा पहुंची।

मैदान चारों ओर सायं-सायं कर रहा है—किसी जीवजन्तु का

नाम-निशान भी नहीं है। धूप जिस प्रकार निष्ठुर है, बालू की तरंगें भी वैसी ही हैं—वे मानो शून्यता की पहरेदार हैं, जो कुंडली मारे चुपचाप बैठी हुई हैं।

जहां किसी पुकार का कोई जवाब नहीं, किसी प्रश्न का कोई उत्तर नहीं, ऐसी सीमाहीन, विवर्ण सफ़ेदी के बीच खड़े-खड़े दामिनी का हृदय बैठ गया। ऐसा जान पड़ता है मानो यहां का सब कुछ मिटकर, एकदम एकाकार होकर, किसी आदिम सफ़ेदी की अवस्था को पहुंच गया हो! पैरों के नीचे पड़ा हुआ है केवल एक 'न': उसमें न शब्द है, न गति ; न रक्त की लालिमा है, न पेड़-पौधों की हरियाली ; न आकाश की नीलिमा है, न मिट्टी का गेरुआपन। जैसे किसी मुर्दे के सिरहाने किसी की प्रकांड ओष्ठहीन हंसी हो ; जैसे किसी बेरहम तपे हुए आसमान के पास किसी विपुल सूखी जीभ ने भयंकर तृष्णा का एक विशाल आवेदन पेश किया हो।

दामिनी सोच ही रही थी कि किधर जाए, तभी अचानक बालू के ऊपर पैर के कुछ चिन्ह दिखाई पड़े। उन्हीं निशानों को देखती हुई वह जहां जा पहुंची, वहां पानी का एक छोटा गढ़ा-सा था। उसके किनारे-किनारे भीगी मिट्टी पर असंख्य पक्षियों के पैरों के निशान दिखाई दे रहे थे। वहीं बालू की करार की छायातले शचीश बैठा था। सामने का पानी गाढ़े नीले रंग का दिखाई दे रहा है, किनारे-किनारे चंचल पंकफोर पंछी पूंछ नचा-नचाकर अपने गंगा-जमुनी पंखों की झलक दिखा रहे हैं। कुछ ही दूर पर चकवा-चकई का दल कोलाहल कर रहा है, और हर तरह कोशिश करके भी पीठ के पंखों को पूरे तौर पर मन-माफ़िक झाड़ नहीं पा रहा

है। दामिनी ज्यों ही करार पर पहुँची कि वे सब पंख पसारकर शोर करते हुए उड़ गए।

दामिनी को देखकर शचीश बोल उठा : यहां कैसे ?

दामिनी बोली : खाना लाई हूं।

शचीश ने कहा : मैं नहीं खाऊँगा।

दामिनी बोली : बहुत देर हो गई है—

शचीश ने केवल नाहीं भर कर दी और फिर चुप हो रहा।

दामिनी बोली : न हो, मैं थोड़ी देर बैठी जाती हूं, तुम कुछ देर बाद ही सही—

शचीश बीच ही में बोल उठा : उफ़, क्यों तुम मुझे नाहक—

लेकिन अचानक दामिनी का मुंह देखकर वह रुक गया। दामिनी कुछ नहीं बोली। थाली लेकर उठी और चुपचाप चली गई। चारों ओर की शून्य बालू रात में बाघ की आंखों की तरह चमकने लगी।

दामिनी की आंखों में आग जितनी आसानी से सुलगती है, नीर उतनी आसानी से नहीं झरता, किन्तु उस दिन मैंने देखा कि वह ज़मीन पर पैर फैलाए बैठी है, आंखों से नीरव आंसू टपक रहे हैं। मुझे देखकर उसकी रुलाई मानो बांध तोड़कर फूट पड़ी। हृदय के भीतर मुझे कैसा-कैसा लगने लगा। मैं एक किनारे ख़ामोश होकर बैठ गया।

जब वह थोड़ी स्वस्थ हुई तो मैंने उससे कहा, शचीश की तबीयत के लिये तुम इतनी चिंतित ही क्यों होती हो ?

दामिनी बोली : तो उनकी और कौन-सी चिंता कर सकती हूं बताओ ? शरीर के सिवा और सब बातों की चिंता तो वे आप ही

कर रहे हैं। मैं क्या वह सब कुछ समझती भी हूं या उस विषय में कुछ कर भी सकती हूं ?

मैंने कहा : देखो, मनुष्य का मन जब अत्यन्त ज़ोर से किसी वस्तु पर केन्द्रित हो जाता है तो उसके शरीर के अन्य सब प्रयोजन अपने-आप कम हो जाते हैं। इसीलिये बड़े भारी दुःख या बड़े भारी आनन्द में भूख-प्यास नहीं लगती। इस समय शचीश का मन जैसी अवस्था में है, उसमें यदि उसके शरीर की ओर ध्यान न भी दो तो कोई हानि नहीं होगी।

दामिनी बोली : मैं नारी जो हूं! उसी शरीर को देह और प्राण के सहारे गढ़ना हमारा स्वधर्म है—वह स्त्रियों का बिल्कुल अपना काम है। इसीलिये जब हम देखती हैं कि वही शरीर कष्ट पा रहा है, तो हमारा मन सहज ही रो उठता है।

मैंने कहा, इसीलिये जो लोग मन की दुनिया में ही मस्त रहते हैं, वे अपने शरीर की अभिभावक—तुम लोगों को आंखों से देखते तक नहीं।

दामिनी दृप्त होकर बोल उठी, और नहीं तो क्या! और जब देखते हैं तब कुछ इस प्रकार देखते हैं कि किसी तीन लोक से न्यारी वस्तु की सृष्टि हो उठती है।

मैंने मन ही मन कहा, उसी तीन लोक से न्यारी वस्तु पर ही तो तुम्हारे लोभ की कोई सीमा नहीं रहती!—अरे ओरे श्रीविलास, कुछ ऐसा पुण्य कर कि तू भी अगले जन्म में इन्हीं तीन लोक से न्यारों के दल में पैदा हो सके!

३

उस दिन नदी की रेती पर शचीश ने दामिनी को एक ऐसी सख़्त चोट पहुंचाई कि परिणामस्वरूप दामिनी की उस कातर दृष्टि को शचीश अपने मन से हटा ही नहीं सका। इसके बाद कुछ दिन तक वह दामिनी के ऊपर ज़रा विशेष यत्न दिखाकर अनुताप का व्रत पालन करने लगा। बहुत दिनों तक तो उसने हम लोगों के साथ अच्छी तरह बात ही नहीं की, बाद में वह दामिनी को नज़दीक बुला-बुलाकर उसके साथ बातचीत करने लगा। बातचीत का विषय वे सभी बातें थीं, जिन्हें शचीश ने अनेक चिंतन और ध्यान के बाद पाया था।

दामिनी शचीश की उदासीनता से उतना नहीं डरती थी, जितना उसकी इस ममता से डरने लगी। वह जानती थी कि शचीश को बहुत दिनों तक यह बर्दाश्त नहीं हो सकेगा क्योंकि शचीश की प्रकृति के लिये यह सौदा ज़रा ज़्यादा ही महंगा था। एक दिन ज्योंही हिसाब की ओर नज़र पड़ेगी और शचीश देखेगा कि ख़र्च बहुत ज़्यादा पड़ रहा है, उसी दिन ख़तरा हाज़िर हो जायगा। आजकल शचीश अत्यन्त भले लड़के की तरह नियमित रूप से स्नानाहार किया करता, इससे दामिनी की छाती धुकधुक करती रहती, न जाने कैसी एक लज्जा-सी उसे अनुभव होती। शचीश यदि अवज्ञा करता तो मानो वह बच जाती। वह मन ही मन कहती : उस दिन जो तुमने मुझे दूर कर दिया था सो अच्छा ही किया था। मेरे प्रति जो यह तुम्हारी ममता है सो मैं जानती हूं—तुम अपने आपको दंड दे रहे हो। भला

इसे मैं सहूंगी ही कैसे ?—दामिनी मन ही मन खीझकर कहने लगी : आग लगे मेरे नसीब को ! देखती हूं, यहां भी मुझे पहले की तरह स्त्रियों से मेल-जोल करके मुहल्ले-मुहल्ले घूमते फिरना पड़ेगा।

एक दिन रात को अचानक पुकार आई : विश्री ! दामिनी !

इस समय रात के एक बजे हैं या दो, इस बात का ख़याल ही शचीश के मन में नहीं आया। मुझे ठीक नहीं मालूम कि रात को शचीश कौन-सा कांड रचा करता है, किंतु इतना निश्चित है कि उसके उत्पात से इस भुतहे मकान के भूत की भी नाक में दम हो आया है।

हम हड़बड़ाकर नींद से जाग उठे और बाहर निकल आए। देखा, शचीश घर के सामनेवाले पक्के चबूतरे पर अंधेरे में खड़ा है। हमें देखकर वह बोल उठा : मैंने अच्छी तरह समझ लिया है, अब मन में ज़रा भी संदेह नहीं है !

दामिनी धीरे-धीरे चबूतरे पर आकर बैठ गई। शचीश ने भी अनमने भाव से उसका अनुकरण किया। मैं भी बैठ गया।

शचीश बोला : जिस दिशा की ओर मुंह करके वे मेरी ओर आ रहे हैं, उसी दिशा की ओर मुंह करके यदि मैं भी चलता रहूं तो बराबर उनसे दूर ही होता जाऊंगा। उल्टी ओर मुंह करके चलने से ही तो उनसे मिलन होगा ?

मैं चुपचाप उसकी अंगारों-जैसी आंखों की ओर ताकता रहा। उसने जो कुछ कहा, वह रेखागणित के हिसाब से तो सही है, लेकिन आख़िर उसका आशय क्या है ?

शचीश कहता गया : वे रूप को प्यार करते हैं, इसीलिये निरंतर रूप ही की ओर झुकते चले आते हैं। हम लोग तो सिर्फ रूप लेकर

नहीं जोते, इसीलिये हमारी दौड़ अरूप की ओर हुआ करती है। वे मुक्त हैं इसीलिये उनकी लीला बंधन में है; हम बद्ध हैं इसीलिये हमारा आनंद मुक्ति में है। इस बात को हम नहीं समझते इसीलिये नाना भांति के दुःख भोगा करते हैं।

आकाश के तारे जिस प्रकार निस्तब्ध थ, हम लोग भी उसी प्रकार निस्तब्ध बैठे रहे। शचीश कहता गया: दामिनी, समझी नहीं? गीत जो गाया करता है वह आनंद की ओर से रागिनी की ओर आता है, और जो गीत सुनता है वह रागिनी की ओर से आनंद की ओर जाता है। एक आता है मुक्ति से बंधन में, दूसरा जाता है बंधन से मुक्ति की ओर: तभी तो दोनों पक्षों का वज़न बराबर होता है। वे गा रहे हैं और हम सुन रहे हैं। वे अपने को बंधन में बांधते-बांधते सुनाते हैं, हम अपने बंधन खोलते-खोलते सुनते हैं!

नहीं मालूम, शचीश की बात दामिनी समझ भी सकी या नहीं, लेकिन शचीश को वह ज़रूर ही समझ सकी। गोदी में हाथ जोड़े चुपचाप बैठी रही।

शचीश बोला: अब तक मैं अंधियारे कोने में चुपचाप बैठे उसी उस्ताद का गान सुन रहा था। सुनते-सुनते अचानक सब समझ में आ गया। तब और अधिक नहीं रुक सका, इसीलिये तुम लोगों को पुकार उठा। इतने दिनों तक मैंने उन्हें अपने ही सांचे में ढालने का प्रयत्न करके केवल धोखा ही खाया। किन्तु हे मेरे प्रलय! आज से मैं अपने-आपको तुम्हारे ही भीतर चूर्ण-विचूर्ण करता रहूंगा—चिर-काल तक! मेरे कोई बंधन नहीं है, इसीलिये मैं किसी बंधन को पकड़े नहीं रह सकता—और समग्र बंधन तुम्हारे ही पैदा किए हैं

इसीलिये अनंत काल में भी तुम सृष्टि के बंधनों से मुक्त नहीं हो सकते। तुम मेरा रूप लेकर ही रहो, किंतु मैं तो तुम्हारे अरूप में डुबकी लगाने चला। हे असीम, तुम मेरे हो, तुम मेरे हो—यही कहते-कहते शचीश अंधकार में नदी के करार की ओर चला गया।

४

उसी रात के बाद से शचीश ने फिर अपना वही पुराना ढंग अख़्तियार कर लिया, उसके नहाने-खाने का कोई ठौर-ठिकाना नहीं रहा। कब उसके मन की तरंगें आलोक की ओर उठतीं और कब अंधकार की ओर गिर पड़तीं, यह समझ ही में नहीं आता। ऐसे अजीब प्राणी को भले आदमी के लड़के की तरह खिला-पिलाकर स्वस्थ रखने का गुरुभार जिसने लिया है, भगवान ही उसके सहाय हों!

उस दिन वायुमंडल दिन भर गुम-सुम बना रहा। रात को ज़ोर का एक अंधड़ आया। हम तीनों तीन कमरों में सोते थे। सामने के बरामदे में मिट्टी के तेल की एक ढिबरी जलती रहती, वह बुझ गई। नदी में उथलपुथल मच गई। आकाश की छाती चीरकर मूसलधार वृष्टि होने लगी। नदी की तरंगों की छल-छल और आकाश के जल की झरझर-ध्वनियों में, ऊपर और नीचे के कुलाबे मिलकर प्रलय की रंगभूमि में झमाझम करताल बजाने लगे। पुंजीभूत अंधकार के गर्भ में जो कुछ हिल-डुल रहा था, वह मैं कुछ भी देख नहीं पा रहा, और फिर भी उसकी नाना भांति की आवाज़ों से सारा आकाश अंधे बालक की तरह मारे डर के सिटपिटा रहा था। बांस के

वन में मानों किसी विधवा प्रेतिनी को रुलाई सुनाई दे रही थी ; आम के बग़ीचे में शाखाओं और टहनियों का झपाझप शब्द हो रहा था। बीच-बीच में दूर पर नदी के करार टूट-टूटकर धसकने से बारबार धमाके की आवाज़ हो रही थी और हमारे पुराने मकान की हड्डी-पसली के भीतर बार-बार हवा की तीक्ष्ण छूरी भोंककर वह प्रचण्ड आंधी एक उन्मत्त जन्तु की भांति लगातार हू-हू शब्द से चीत्कार ही किए जा रही थी।

ऐसी रात में हमारे मन के खिड़की-दरवाज़ों की सिटकिनियां खुल जाती हैं, आंधी बरबस भीतर घुस आती है, भीतर के असबाबों को उलट-पलट देती है, और पर्दों में से कौन किस तरफ़ फट-फटाकर कहां उड़ जाता है, पता ही नहीं लगता। मुझे नींद नहीं आ रही थी। बिछौने पर पड़ा-पड़ा ज़मीन आसमान की क्या-क्या बातें सोच रहा था: सो उन्हें लिखकर क्या होगा! इस इतिहास में उन सबकी बिसात ही क्या!

इसी समय सहसा शचीश अपने कमरे के अंधकार में से बोल उठा: कौन है?

उत्तर आया: मैं हूं—दामिनी। तुम्हारी खिड़की खुली हुई है, कमरे में पानी की बौछार आ रही है—बंद कर दूं।

बंद करते-करते दामिनी ने देखा, शचीश अचानक बिछौने से उठ खड़ा हुआ है। क्षण भर को मानो मन में दुविधा-सी हुई, फिर वह तेज़ी से कमरे से बाहर निकल गया। बिजली कौंधने लगी और एक दबा हुआ-सा वज्र सहसा गड़गड़ा उठा।

दामिनी कितनी ही देर तक अपने कमरे की चौखट पर बैठी रही

लेकिन कोई नहीं लौटा। हवा के झोकों की अधीरता बराबर बढ़ती ही जा रही थी।

दामिनी अब और अधिक नहीं रुक सकी, बाहर निकल पड़ी। हवा में खड़ा होना भी मुश्किल था। ऐसा लगता था मानो किसी प्रबल देवता के प्यादे उसे डांटते-धकेलते हुए आगे बढ़ाए लिए जा रहे हैं। विश्व का जड़ अंधकार आज मानो जंगम हो उठा था। वर्षा का पानी आकाश को सभी संधियों को पूरने के लिये प्राणों की बाज़ी लगाए था। इसी प्रकार अगर आज दामिनी भी रो-रोकर अपने आंसुओं से विश्वब्रह्माण्ड को डुबा सकती तो उसके प्राण बच जाते।

अचानक बिजली की एक कौंध ने आकाश के अंधकार को एक किनारे से दूसरे किनारे तक तड़तड़ाहट के साथ चिथड़े-चिथड़े कर दिया। उस क्षणिक आलोक में दामिनी ने देखा, शचीश नदी-किनारे स्तब्ध खड़ा है। दामिनी अपनी सारी शक्ति लगाकर एक दौड़ में बिल्कुल उसके पावों के पास जाकर गिर पड़ी। हवा के चीत्कार को अपनी आवाज़ से पराजित करती हुई बोली : तुम्हारे पैर छूकर कहती हूं, मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया। तब क्यों मुझे इस तरह दंड दे रहे हो ?

शचीश चुपचाप खड़ा रहा।

दामिनी बोली : यदि मुझे लात मारकर नदी में फेंकना चाहते हो तो फेंक सकते हो, लेकिन तुम घर तो लौट चलो।

शचीश लौट आया। भीतर आते ही बोला : मैं जिन्हें खोज रहा हूं मुझे उन्हींकी आज सख्त ज़रूरत है—और किसीकी भी नहीं। दामिनी, तुम मेरे ऊपर दया करो, मुझे छोड़कर चली जाओ !

दामिनी थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ी रही, और फिर बोली : यही सहा, मैं चली जाऊंगी !

५

बाद में मैंने दामिनी से शुरू से अंत तक का सारा दास्तान सुना, किंतु उस दिन तो कुछ भी नहीं जानता था। इसीलिये बिछौने पर से जब देखा कि ये दोनों अपने-अपने कमरों की ओर चले गए तो ऐसा मालूम हुआ, मानो मेरा दुर्भाग्य मेरी छाती पर चढ़कर मेरा गला घोंटने जा रहा है। मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा। उस रात फिर नींद नहीं आई।

दूसरे दिन सबेरे देखा, दामिनी का चेहरा कैसा-कैसा हो गया है ! कल रात की आंधी के समूचे तांडवनृत्य ने दुनिया में इसी स्त्री के ऊपर ही मानो अपना पूरा पदचिह्न रख छोड़ा है। इसका कुछ भी इतिहास न जानते हुए भी शचीश के ऊपर मुझे ग़ुस्सा आने लगा।

दामिनी ने मुझसे कहा : श्रीविलासबाबू, चलो, तुम मुझे कलकत्ते तक पहुंचा दो।

दामिनी के लिये शचीश को छोड़ सकना कितनी कठिन बात है सो मैं ख़ूब जानता था, लेकिन मैंने उससे कुछ नहीं पूछा। कठिन पीड़ा के भीतर भी मैंने आराम-सा पाया। यहां से दामिनी का चले जाना ही अच्छा है। अचल पहाड़ से टकरा-टकराकर नाव की तो धज्जियां ही उड़ गई हैं !

विदा की वेला दामिनी शचीश को प्रणाम करती हुई बोली : मैंने अनेक अपराध किए हैं, माफ़ कर देना।

शचीश धरती की ओर आंख झुकाते हुए बोला : मैंने भी अनेक अपराध किए हैं ; सभी कुछ धो-पोंछकर ही क्षमा मांगूंगा।

दामिनी में प्रलय की आग-सी जल रही थी—कलकत्ते आते-आते मैं इसे ख़ूब समझ सका। उसीका ताप लगने से जब एक दिन मेरा मन भी ज़्यादा उत्तप्त हो उठा, उस दिन मैंने भी शचीश को लक्ष्य करके कुछ कड़ी-कड़ी बातें कह दीं। किंतु सुनते ही दामिनी ने ग़ुस्से से कहा : देखो, उनके बारे में मेरे सामने तुम ऐसी बातें मत कहा करो। उन्होंने मुझे किस तरह उबारा है सो तुम क्या जानो! तुम तो केवल मेरी पीड़ा ही की ओर देखते हो ; मुझे बचाने के लिये उन्होंने जो निदारुण यंत्रणा पायी है, उस ओर क्या तुम्हारी दृष्टि नहीं जाती ? सुन्दर को मारने जाकर असुन्दर ने बीच-छाती ही में आघात पाया है। बहुत अच्छा हुआ, ठीक हुआ, ख़ूब हुआ!—कहकर दामिनी अपनी छाती कूटने लगी। मैंने ज़ोर से उसका हाथ दबा लिया।

हम दोनों सन्ध्या समय कलकत्ते पहुंचे और उसी समय दामिनी को उसकी एक मौसी के यहां पहुंचाकर मैं एक परिचित ढाबे में जा टिका। जान-पहिचान के लोग मुझे देखकर चौंक उठे, बोले : यह क्या ! तुम क्या बीमार हो ?

दूसरे दिन पहली डाक से ही दामिनी की चिट्ठी मिली : मुझे आकर लिवा ले जाओ ; यहां मेरे लिये जगह नहीं है।

मौसी दामिनी को घर में नहीं रखेंगी। सुना, हम लोगों की बदनामी का ढिंढोरा सारे शहर में पिट गया है। हमारे अपने दल को छोड़ने के थोड़े ही दिनों बाद साप्ताहिक पत्रों के 'विजयांक' जो निकले

थे ! सो इसके लिये हमारा यूपकाष्ठ तैयार ही था, अतएव रक्त-पात में भी कोई क़सर नहीं की गई। शास्त्र में स्त्री-पशु की बलि निषिद्ध है किंतु जहां तक मनुष्य का सवाल है, उसे सबसे अधिक उल्लास इसीमें होता है ! सो यद्यपि अख़बारों में दामिनी का नाम साफ़-साफ़ नहीं था, फिर भी इस चतुराई में भी कोई कमी नहीं की गई थी कि जिससे बदनामी तनिक भी अस्पष्ट न रह जाए। इसका नतीजा यह हुआ कि दूर के रिश्ते की मौसी का मकान भी दामिनी के लिये काफ़ी भयंकर रूप से संकीर्ण साबित हुआ।

इस बीच दामिनी के मातापिता का देहांत हो चुका था, लेकिन भाइयों में से कोई-कोई अब भी जीवित थे, ऐसा ही मेरा जाना हुआ था। मैंने जब दामिनी से उनका पता पूछा तो उसने सिर हिलाकर बात यहीं ख़त्म कर दी कि वे लोग बहुत ग़रीब हैं।

दरअसल बात यह थी कि दामिनी उन्हें भी धर्म-संकट में नहीं डालना चाहती थी। फिर यह आशंका तो थी ही कि कहीं भाईलोग भी वही जवाब न दे बैठें : यहां जगह नहीं है !—उस चोट को वह बर्दाश्त न कर पाती। मैंने पूछा : तो फिर जाओगी कहां ?

दामिनी शांत भाव से बोली : लीलानंद स्वामी के पास।

लीलानन्द स्वामी ! थोड़ी देर तक तो मेरे मुंह से कोई बात ही नहीं निकली ! भाग्य की भी भला यह कैसी निदारुण लीला है !

मैंने कहा : स्वामीजी तुम्हें स्वीकार भी करेंगे ?

दामिनी बोली : बड़ी ख़ुशी से।

दामिनी आदमी पहचानती है। जो लोग दल-चर जाति के मनुष्य हैं, वे अपने दल को बढ़ाने के लिये अगर आदमी को पा जाएं

तो सत्य को पाने की अपेक्षा कहीं ज़्यादा प्रसन्न होते हैं। लीलानन्द स्वामी के यहां दामिनी को जगह की कमी नहीं होगी, यह बात बिल्कुल ठीक थी, लेकिन—

तभी इस निविड़ संकट के समय मैंने कहा: दामिनी, एक और भी रास्ता है; यदि अभय दो तो कह डालूं।

दामिनी बोली: कहो, सुनूं भला।

मैं बोला: यदि मेरे-जैसे आदमी के साथ भी तुम्हारे लिये ब्याह करना संभव हो तो—

दामिनी मुझे रोककर बोली: यह कैसी बात कह रहे हो, श्रीविलासबाबू? कहीं पागल तो नहीं हो गए?

मैं बोला: फ़र्ज़ करो पागल ही हो गया हूं। पागल होने से बहुत-सी कठिन बातों का फ़ैसला बड़ी आसानी से कर सकने की क्षमता आ जाती है। पागलपन आरब्योपन्यास का वह जूता है जिसमें पैर डालते ही दुनिया की हज़ारों बेकार बातों को अनायास ही पार किया जा सकता है।

बेकार? बेकार बातें तुम किन्हें कहते हो?

यही—जैसे, लोग क्या कहेंगे, आगे चलकर क्या होगा, इत्यादि इत्यादि।

दामिनी बोली: ये तो बेकार बात हुईं, और असल बात?

मैं बोला: असल बात से तुम्हारा क्या मतलब है?

यही, जैसे मेरे साथ ब्याह करने पर तुम्हारी क्या दशा होगी?

ओ, यदि यही असल बात हो तो मैं निश्चिन्त हूं, क्योंकि मेरी दशा इस समय जैसी है, भविष्य में उससे ज़्यादा ख़राब नहीं होगी।

अपनी दशा को अगर हवा बदलने के लिये बिल्कुल ही स्थानान्तरित कर सकता तो बच जाता। उतना नहीं तो कम-से-कम करवट बदलाने में भी थोड़ा-बहुत आराम तो मिलता ही है।

आज तक अपने प्रति मेरे मनोभाव के संबंध में दामिनी ने किसी प्रकार तार द्वारा भी संक्षिप्त रूप में ख़बर नहीं पाई होगी, इस बात में मैं विश्वास नहीं करता। लेकिन इतने दिनों तक उसके लिये वह ख़बर कोई ज़रूरी नहीं थी—कम-से-कम उसका कोई जवाब देना तो निष्प्रयोजन था ही। इतने दिनों बाद आज जवाब का एक दावा पेश हुआ।

दामिनी चुपचाप सोचने लगी। मैंने कहा : दामिनी, मैं संसार के अत्यन्त साधारण आदमियों में से एक हूं—यहां तक कि शायद उससे भी कम—तुम मुझे बिलकुल तुच्छ ही समझ सकती हो। मेरे साथ विवाह करना भी जैसा है, नहीं करना भी वैसा ही है, अतएव तुम्हारे लिये इतने सोच-विचार की तो कोई बात ही नहीं है।

दामिनी की आंखें छलक आईं। बोली : तुम यदि सचमुच साधारण मनुष्य होते तो मैं कुछ भी नहीं सोचती!—केवल इतना ही कहकर दामिनी फिर सोच में डूब गई।

थोड़ी देर बाद बोली : तुम तो मुझे जानते हो।

मैंने कहा : तुम भी तो मुझे जानती हो, दामिनी।

सो बात इसी प्रकार शुरू हुई। जो बातें मुंह से नहीं कही जा सकीं, उन्हींका परिमाण ज़्यादा था।

पहले ही कह आया हूं कि एक दिन अपनी अंगरेज़ी वक्तृता से

मैंने अनेकों के चित्त हरण कर लिए थे। आज इतने दिनों का व्यवधान पाकर उनमें से बहुतों का नशा टूट चुका था। किंतु मेरे भक्तों में से नरेन्द्र अब भो मुझे वर्तमान युग का दैव-लब्ध पदार्थ ही मानता था। उसके एक मकान में किरायेदार के आने में लगभग डेढ़ महोने की देरी थी। फ़िलहाल हमने वहीं आश्रय लिया।

मेरा प्रस्ताव पहले ही दिन पहिया तुड़ाकर जो मौन के गड्ढे में गिरा, तो ऐसा मालूम हुआ कि वह 'हां' और 'ना' से परे वहीं अटक कर रह गया। कम-से-कम उसे बाहर खींच लाने के लिये अब बहुत मरम्मत और 'ज़ोर लगा दो हेइयां' करने को ज़रूरत है, ऐसा तो जान ही पड़ा। किन्तु मन नामक वस्तु को सृष्टि ही इसोलिये हुई है कि वह अपने अचिंतनीय परिहास से मनोविज्ञान को चिरकाल धोखा देता रहे। सो सृष्टिकर्त्ता के आनन्द का वह उच्च हास्य अबकी बार के फागुन में भाड़े के इस मकान की चहारदीवारी में ही बार-बार ध्वनित होने लगा।

मैं भी कुछ हूं, इस बात की तरफ़ ख्याल करने की इतने दिनों तक दामिनी को फ़ुरसत ही नहीं थी। शायद किसो और तरफ़ से उसकी आंखों पर ज्यादा प्रकाश पड़ रहा था। किंतु इस बार उसकी दुनिया संकीर्ण होकर उतनी ही जगह में केन्द्रित हो गई जहां सिर्फ़ मैं ही अकेला था। इसोलिये आज मुझे भर-नज़र देखने के सिवाय कोई चारा नहीं रह गया था। अपने को ख़ुशक़िस्मत हो कहूंगा कि ठीक इसी समय मानो दामिनी ने मुझे पहली बार देखा।

मैं दामिनी के साथ कितने ही नदी-पहाड़ और सागर के तीर घूमा-फिरा हूं। साथ ही साथ मृदंग और करताल की आंधी में, रस

की तान से, हवा में उद्दाम आगी सुलगती रही है। "चरनों में तिहारे, परान में मेरे, लगी दुहुँ ओर सुप्रेम की फांसी!"—इस पद की शिखा हर बार नित-नये आखरों में चिनगारी बरसातो रही है। फिर भी हम दोनों के बीच जो पर्दा था, वह अगर नहीं जला तो अब तक भी नहीं जला था।

किंतु कलकत्ते की इस गली में आकर यह क्या हो गया! आज हमारी दृष्टि में एक-दूसरे से सटे हुए ये मकान मानो पारिजात के फूलों की तरह छिटक उठे हैं। मानना ही होगा कि विधाता का यह एक ख़ासा कृतित्व ही था। ईंट-काठ को भी आज उन्होंने अपने महा-संगीत के सुर में ढाल दिया है। और मेरे-जैसे सामान्य मनुष्य को भी जाने-किस पारसमणि छू दिया हैं कि दमभर ही में मैं असामान्य हो उठा हूं।

ओट जब तक बनी रहती है, तब तक मानो बीच में अनन्तकाल का व्यवधान रहता है, परंतु जब वह टूट जाती है तो वही व्यवधान एक पल का हो जाता है। अतएव अब बहुत देरी नहीं लगी। दामिनी बोली : मैं मानो किसी स्वप्न में डूबी थी, जागने के लिये केवल इसी एक धक्के की ही ज़रूरत थी। मेरे उस समय के तुम और इस समय तुम के बीच सिर्फ एक तंद्रा-सी उपस्थित थी। अपने गुरु को मैं बारबार प्रणाम करती हूं कि उन्होंने मेरी यह तंद्रा तोड़ दी।

मैंने कहा : दामिनी, तुम इस तरह मेरे मुंह की ओर न देखो। विधाता की यह सृष्टि सुदृश्य नहीं है, इस बात को तुमने जब पहले आविष्कार किया था, तब उसे मैंने किसी प्रकार सह भी लिया था, लेकिन अब तो सहन करना मुश्किल होगा।

दामिनी बोली : विधाता की वही सृष्टि सुदुश्य है, आज यही बात आविष्कार कर पा रही हूं।

मैंने कहा : तब इतिहास में तुम्हारा नाम अमर रहेगा। उत्तरी ध्रुव का आविष्कार करके वहां झंडा गाड़ आनेवाले की कीर्ति भी इसके सामने तुच्छ है। यह तो केवल दुःसाध्य-साधन नहीं, असाध्य-साधन है।

इसके पहले मैंने कभी यह बात इस तरह निःसंशय भाव से नहीं समझी थी कि फागुन का महीना इस क़दर छोटा होता है। केवल इने-गिने तीस दिन—और सो भी चौबीस घंटों से एक मिनट ज़्यादा के नहीं! भला सोचिए तो! विधाता के हाथ में अनन्त काल है तथापि ऐसी अशोभन कंजूसी वे क्यों किया करते हैं, यह बात मुझे आज तक समझ में नहीं आई।

दामिनी बोली : अच्छा, तुम यह जो मेरे साथ विवाह करने का पागलपन करने जा रहे हो सो इसमें तुम्हारे घर के लोग—

वे मेरे सुहृद हैं। इस बार लोग मुझे घर से बिल्कुल ही निकाल देंगे।

इसके बाद ?

इसके बाद हम दोनों मिलकर नींव से शुरू करके ऊपर के शीर्ष तक बिल्कुल नये सिरे से नया घर बसाएंगे—वह सिर्फ हमीं दोनों की सृष्टि होगी।

दामिनी बोली : और उस घर की गृहिणी को भी तुम्हें एकदम शुरू से ही गढ़ना होगा! वह भी तुम्हारे ही हाथ की सृष्टि हो—पुराने ज़माने का कुछ भी टूटा-फूटा उसपर अपना चिह्न न छोड़े!

आख़िर चैत का महीना आया। दिन निश्चित करके ब्याह का बंदोबस्त किया गया। दामिनी ने लाड़ के अभिमान में हठ किया कि शचीश को बुलाना ही होगा।

मैंने कहा : क्यों ?

वही तो कन्यादान करेंगे।

वह पगला भला इस समय कहां घूम रहा होगा सो कौन बताए? चिट्ठियों पर चिट्ठियां लिखीं लेकिन जवाब नदारद। अब भी ज़रूर उसी भुतहे मकान में रहता होगा, नहीं तो चिट्ठी लौट आती। लेकिन इस बात में भी काफ़ी संदेह है कि वह कभी किसीकी चिट्ठी खोलकर पढ़ता भी है या नहीं।

मैंने कहा : दामिनी, तुम्हें स्वयं जाकर निमंत्रण देना होगा। "पत्र-द्वारा निमंत्रण देने का अपराध क्षमा करेंगे"—वाला प्रचलित तरीक़ा यहां नहीं चलेगा। मैं अकेला ही चला जाता लेकिन डरपोक आदमी ठहरा। बहुत मुमकिन है, इस समय शचीश नदी के उस पार जा पहुंचा है और चक्रवाकों की पीठ के परों को झाड़-पोंछकर साफ़ कर रहा है, उन्हींकी आवभगत में मशगूल है। वहां तक कोई जा सके, ऐसी पक्की छाती तुम्हें छोड़ और किसीकी नहीं हो सकती।

दामिनी ने हंसकर कहा : मैंने तो प्रतिज्ञा की थी कि फिर कभी वहां नहीं जाऊंगी।

मैंने जवाब दिया : भोजन लेकर वहां जाओगी यही तो प्रतिज्ञा थी, तो भोजन का निमंत्रण लेकर भला क्यों नहीं जाओगी ?

ख़ैर, इस बार किसी प्रकार की दुर्घटना नहीं घटी। अंत में हम दोनों शचीश के दोनों हाथ पकड़कर उसे गिरफ़्तार करके कलकत्ते

ले आए। खेलने की चीज़ पाकर बच्चा जिस प्रकार प्रसन्न हो उठता है, शचीश भी हमारे विवाह की बात सुनकर उसी प्रकार प्रसन्न हो उठा। हमने सोचा था कि सारा काम चुपके से निबटा देंगे, परन्तु शचीश किसी प्रकार इसके लिये राज़ी नहीं हुआ। विशेष करके बड़े चाचा के उन मुसलमान मुहल्लेवालों को जब शादी की ख़बर लगी तो उन्होंने ऐसी धूमधाम शुरू की कि मुहल्लेवालों को ख़याल हुआ, मानो क़ाबुल के अमीर आए हों—या कम-से-कम हैदराबाद के निज़ाम तो होंगे ही।

अख़बारों में और भी शोर मच गया। इस बार के 'विजयांक' में हम दोनोंको लेकर मानो जोड़ा-बलि दी गई। इसके लिये हम किसी को शाप नहीं देंगे। जगदम्बा सम्पादकों की थैलियां भरपूर रखें और ऐसा हो कि पाठकों के नर-रक्त-पान के नशे में कम-से-कम इस बार तो कोई बाधा न पडे!

शचीश बोला: विश्री, तुम लोग मेरे ही मकान में रहो न।

मैंने कहा: तो तुम भी हमारे साथ आ जुटो, हम फिर पहले ही की तरह काम में लग जायं।

शचीश बोला: नहीं, मेरा काम अन्यत्र है।

दामिनी बोली: हमारे 'बहू-भात' का निमंत्रण खाए बिना तुम नहीं जा सकोगे।

सो शचीश रुक गया। बहू-भात के निमंत्रण में निमंत्रित मेहमानों की संख्या कुछ बेहिसाब नहीं थी। कोई था तो सिर्फ़ अकेला शचीश ही।

शचीश ने कहने को तो कह दिया कि हमारे मकान का उपभोग

कर सकते हो, किन्तु यह हमीं जानते थे कि वह कैसा उपभोग होगा। हरिमोहन ने उस मकान पर दख़ल कर लिया था और किसी किरायेदार को वहाँ टिका दिया था। हरिमोहन स्वयं उसे काम में लाते, लेकिन पारलौकिक नफ़ा-नुक़सान के संबंध में जो लोग उनके मंत्री थे, उन्होंने इसे अच्छा नहीं समझा। कहा गया, उस मकान में प्लेग से एक मुसलमान मर गया था।—वैसे जो आएगा उसे भी—लेकिन इस बात को किराएदार के निकट दबा देने से भी काम बख़ूबी चल सकता था।

हम लोगों ने किस प्रकार हरिमोहन के हाथ से मकान का उद्धार किया, इसकी कहानी लम्बी है। मेरे प्रधान सहायक मुहल्ले के मुसलमान-भाई थे। ज़्यादा नहीं, सिर्फ़ बड़े चाचा का वसीयतनामा-भर उन्हें एक बार दिखा दिया गया। इसके बाद मुझे ख़ाहमख़ाह वकीलों के घर बेकार की दौड़-धूप नहीं करनी पड़ी।

अब तक तो मैं घर से बराबर कुछ न कुछ सहायता पाता आया था, किंतु अब वह सहायता बन्द हो गई। हम दोनों बिना किसीकी सहायता के ही गृहस्थी चलाने लगे। कष्ट था, किन्तु उसीमें हमें आनन्द मिलता था। मैं तो रायचन्द्र-प्रेमचन्द्र-मार्का-धारी युवक था, सो प्रोफ़ैसरी मुझे सहज ही जुट गयी। इसके अतिरिक्त इम्तिहान पास करने की पेटेण्ट औषध भी आविष्कार कर डाली—थोड़ी-सी मेहनत करके पाठ्य-पुस्तकों की मोटी-मोटी कुंजियां लिख दीं। हम लोगों के अपने अभाव तो थोड़े-से ही थे, इतने आयोजन की भी ज़रूरत नहीं थी। लेकिन दामिनी ने कहा, यह भी हमीं लोगों की ज़िम्मेदारी है कि शचीश की जीविका की

कुछ भी चिन्ता न करनी पड़े। एक और भी बात थी जो दामिनी ने मुझे नहीं बतायी—मैंने भी उससे नहीं कहा—चुपचाप ही वह काम निबटाना पड़ा। दामिनी की दोनों भतीजियों को किन्हीं सत्पात्रों के साथ ब्याह देने और भतीजों को पढ़ा-गुनाकर आदमी बनाने में जो ख़र्च लगेगा, उसे दामिनी के भाई नहीं दे सकते थे। वे लोग अपने घर में हमें घुसने नहीं देते सो बात अलग थी। कारण, आर्थिक सहायता नामक जो वस्तु होती है, उसके न जाति है न कुल। विशेष करके ऐसे समय में जब कि उस सहायता को ग्रहण करने मात्र की ज़रूरत हो, तब जाति-कुल की बाधा स्वीकार करना निष्प्रयोजन था।

अतएव मुझे अन्य कामों के अतिरिक्त एक अंग्रेज़ी अख़बार का सहकारी-संपादक भी होना पड़ा।

मैंने दामिनी को बिना बताए एक उड़िया ब्राह्मण, एक बेहरे और एक नौकर का बन्दोबस्त किया। दामिनी ने भी मुझे बिना बताए दूसरे दिन सबको विदा कर दिया। मेरे एतराज़ करने पर वह बोली : तुम लोग बराबर उल्टी बात समझकर ही दया दिखाने आते हो। तुम तो बाहर काम कर-करके परेशान होओ, और इधर मैं घर का ज़रा-सा काम ही न कर सकूं—तो मेरी पीड़ा और लाज को ढोएगा ही कौन—कहो तो?

बाहर के जगत से मेरे और भीतर के जगत से दामिनी के काम-काज का गंगा-जमुनी स्रोत हमारे जीवन में आ मिला। इसके सिवा दामिनी ने मुहल्ले की छोटी-छोटी मुसलमान बच्चियों को सीने-पिरोने का काम सिखाना शुरू कर दिया। मुझसे वह किसी प्रकार हार नहीं मान सकती, यही मानो उसका प्रण था।

कलकत्ते का यह शहर ही वृन्दावन है और इसी तरह जी-जान से परिश्रम करना ही वंशी की तान है—अपनी इस उपलब्धि को ठीक स्वर में गा सकूं, ऐसी कवित्व-शक्ति मेरे पास नहीं। किन्तु इतना ज़रूर कहूंगा कि हमारे जो दिन बीते, वे पैदल चलकर भी नहीं बीते —और न बीते दौड़कर ही, वे तो एकदम नाचते-कूदते हंसते-हरखते चले गए!

इसी तरह एक फागुन और भी आया और चला गया। लेकिन उसके बाद का फागुन फिर नहीं करा।

लीलानन्द-स्वामी के साथ भ्रमण से लौट आने के बाद से दामिनी की छाती में एक प्रकार की पीड़ा शुरू हो गई थी। इसकी बात उसने कभी किसीको नहीं बताई। जब पीड़ा बहुत बढ़ गई तो पूछने पर उसने इतना ही कहा: यह मेरा गुप्त ऐश्वर्य है—मेरी पारसमणि। इसी यौतुक को लेकर ही तो मैं तुम्हारे पास आ सकी हूं, नहीं तो क्या मैं भी कभी तुम्हारे योग्य हो सकती थी?

अलग-अलग डाक्टरों ने बीमारी के अलग-अलग नाम बताए। किसीसे किसीका नुस्खा नहीं मिला। आख़िर डाक्टरी मुलाहिज़े और दवाख़ाने के बिल के पुटपाक में मेरे संचित स्वर्ण को भस्म करके उन लोगों ने लंकाकाण्ड की लीला समाप्त की, और उत्तरकाण्ड में यह फ़रमाया कि हवा बदलनी होगी। उस समय हवा के सिवाय मेरे शून्य ख़ज़ाने में और कोई वस्तु बाक़ी भी नहीं थी।

दामिनी बोली: जहां से मैं इस पीड़ा को सहेजकर लाई हूं, मुझे उसी समुद्र के तीर ले चलो।—हवा का वहां कोई अभाव नहीं है।

जिस दिन माघ की पूर्णिमा सौर-फाल्गुन में पड़ी, उस दिन

उमड़ते हुए खारे आंसुओं से भरपूर, ज्वार की वेदना से समुद्र की छाती मानो फूल-फूल उठती थी। दामिनी ने अंतिम बार मेरे पावों की धूलि ली और कहा : जी की साध नहीं मिटी, असीस दो कि अगले जन्म में तुम्हें फिर पा सकूं !